जैन चित्र कथा

चौबीस तीर्थंकर

भाग-2

सम्पादकीय

तीर्थंकर जैन धर्म का एक पारिभाषिक शब्द है। जिसका भाव है, धर्म तीर्थ को चलाने वाला अथवा धर्म तीर्थ का प्रवर्तक। कभी ऐसा भी समय आता है, जब धर्म का प्रभाव क्षीण होने लगता है, उसमें शिथिलता आती है। उस समय ऐसे प्रखर ऊर्जावान महापुरुष जन्म लेते हैं, जो धर्म परम्परा में आई मलिनता और विकृतियों का उन्मूलन कर धर्म के मूल स्वरुप को पुन: स्थापित करते हैं ऐसे ही जगतोद्धारक महान् उन्नायक महापुरुष तीर्थंकर कहलाते हैं। ऐसे तीर्थंकर 24 होते हैं। तीर्थंकर संसार रुपी सरिता को पार करने के लिए धर्म शासन रुपी सेतु का निर्माण करते हैं। धर्म शासन के अनुष्ठान द्वारा अध्यात्मिक साधना कर जीवन को परम पवित्र और मुक्त बनाया जा सकता है। तीर्थंकर महापुरुष से मंडित होते हैं। जो समस्त विकारों पर विजय पा कर जिनत्व को उपलब्ध कर लेते हैं और कैवल्य प्राप्य कर निर्वाण के अधिकारी बनते हैं।

वर्तमान कालचक्र मे भगवान ऋषभदेव प्रथम और भगवान महावीर अन्तिम चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। चौबीस तीर्थंकरों के घटना चक्र के बारे में चित्र कथाओं के माध्यम से बाल पीढ़ी को जानकारी मिल सके इस हेतु चौबीस तीर्थंकरों को तीन भागों में पढ़ कर आत्म सात करें। तीर्थंकरत्व की उपलब्धि सहज नही है। हर एक साधक आत्म साधना कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, पर तीर्थंकर नही बन सकता। तीर्थंकरत्व की उपलब्धि बिरले साधकों को ही होती है। इसके लिए अनेकों जन्मों की साधना और कुछ विशिष्ठ भावनाएँ अपेक्षित होती हैं विश्व कल्याण की भावना से अनुप्राणित साधक जब किसी केवलज्ञान अथवा श्रुत केवली के चरणों में बैठकर लोक कल्याण की सुदृढ़ भावना पाता है तभी तीर्थंकर जैसी क्षमता को प्रदान करने में समर्थ तीर्थंकर प्रकृति नाम के महापुण्य कर्म का बन्ध करता है। इसके लिए सोलह कारण भावनाएँ बताई गई है जो तीर्थंकरत्व का कारण है पाठक गण इस चित्रकथा को पढ़कर तीर्थंकरों की विशेष जानकारी प्राप्त करें।

ब्रं धर्मचन्द शास्त्री
अष्टापद तीर्थ जैन मंदिर

जैन चित्र कथा

सुनो सुनायें सत्य कथाऐं

आशीर्वाद - श्री अभिनन्दन सागर जी महाराज
प्रकाशक - आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला एवं भा. अनेकान्त विद्वत परिषद
निर्देशक - ब्रं धर्मचंद शास्त्री
कृति - चौबीस तीर्थंकर भाग - 2
सम्पादक - ब्रं रेखा जैन एम. ए. अष्टापद तीर्थ
पुष्प नं. - 52
चित्रकार - बने सिंह राठौड़
प्राप्ति स्थान - 1. अष्टापद तीर्थ जैन मन्दिर
2. जैन मन्दिर गुलाब वाटिका

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अष्टापद तीर्थ जैन मन्दिर
विलासपुर चौक,
दिल्ली-जयपुर N.H. 8,
गुड़गाँव, हरियाणा
फोन : 09466776611
09312837240

मूल्य-25/- रुपये

समवशरण से लौटकर महाराज भरत ने पहले चक्ररत्न की पूजा की याचकों को इच्छानुसार दान देते हुए पुत्रोत्सव मनाया। फिर दिग्विजय यात्रा की तैयारी करने लगे। शुभ मुहूर्त में प्रस्थान किया। अनेक हाथी, घोड़े एवं प्यादों से भरी हुई सम्राट की सेना बहुत प्रभावशाली मालूम होती थी। अयोध्यापुरी से निकलकर प्रकृति की शोभा निहारती मैदान में द्रुत गति से जाने लगी थी। बीच-बीच में अनेक अनुयायी राजा अपनी सेना सहित राजा भरत के साथ आ मिलते थे। सेना नदी की भांति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

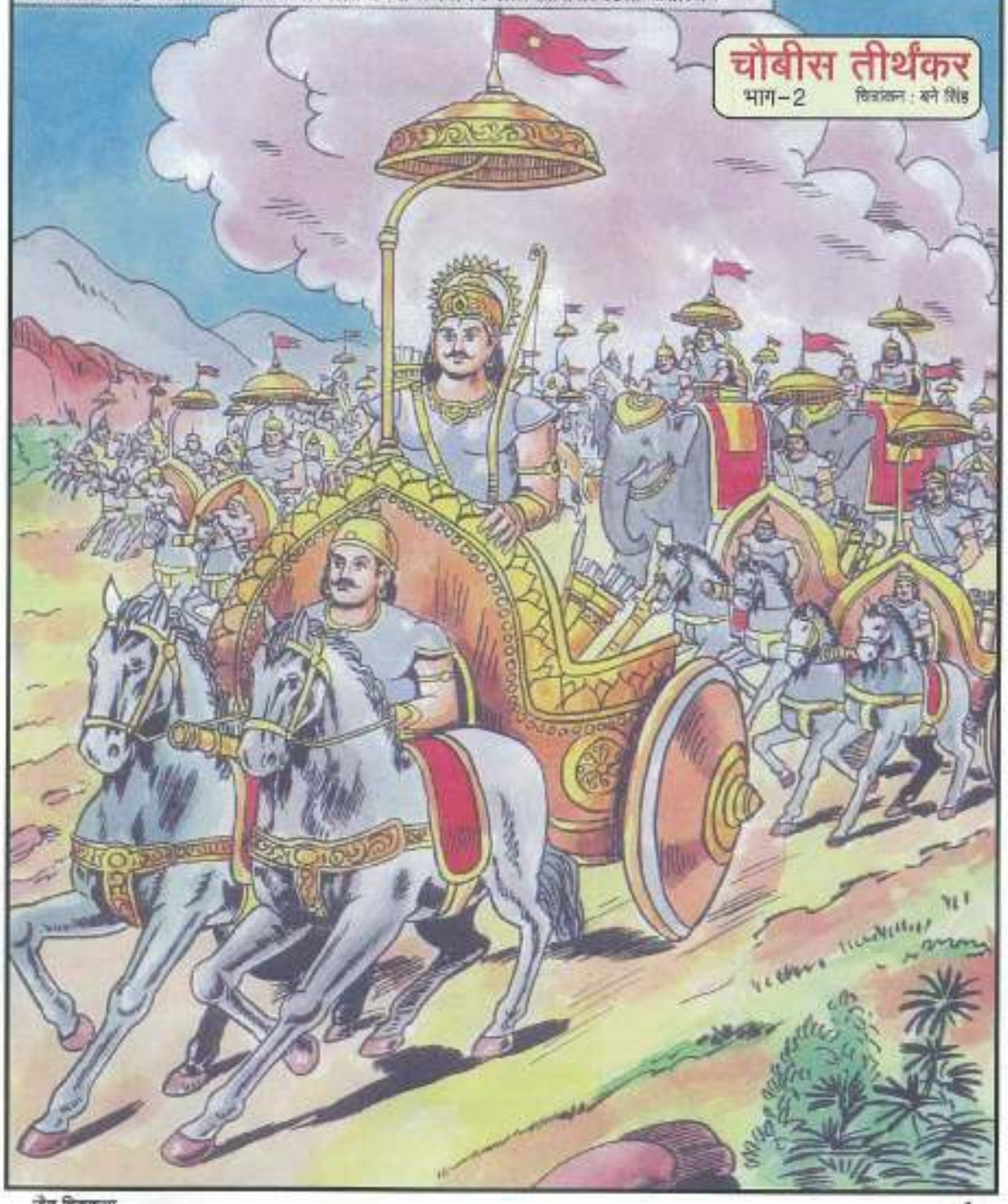

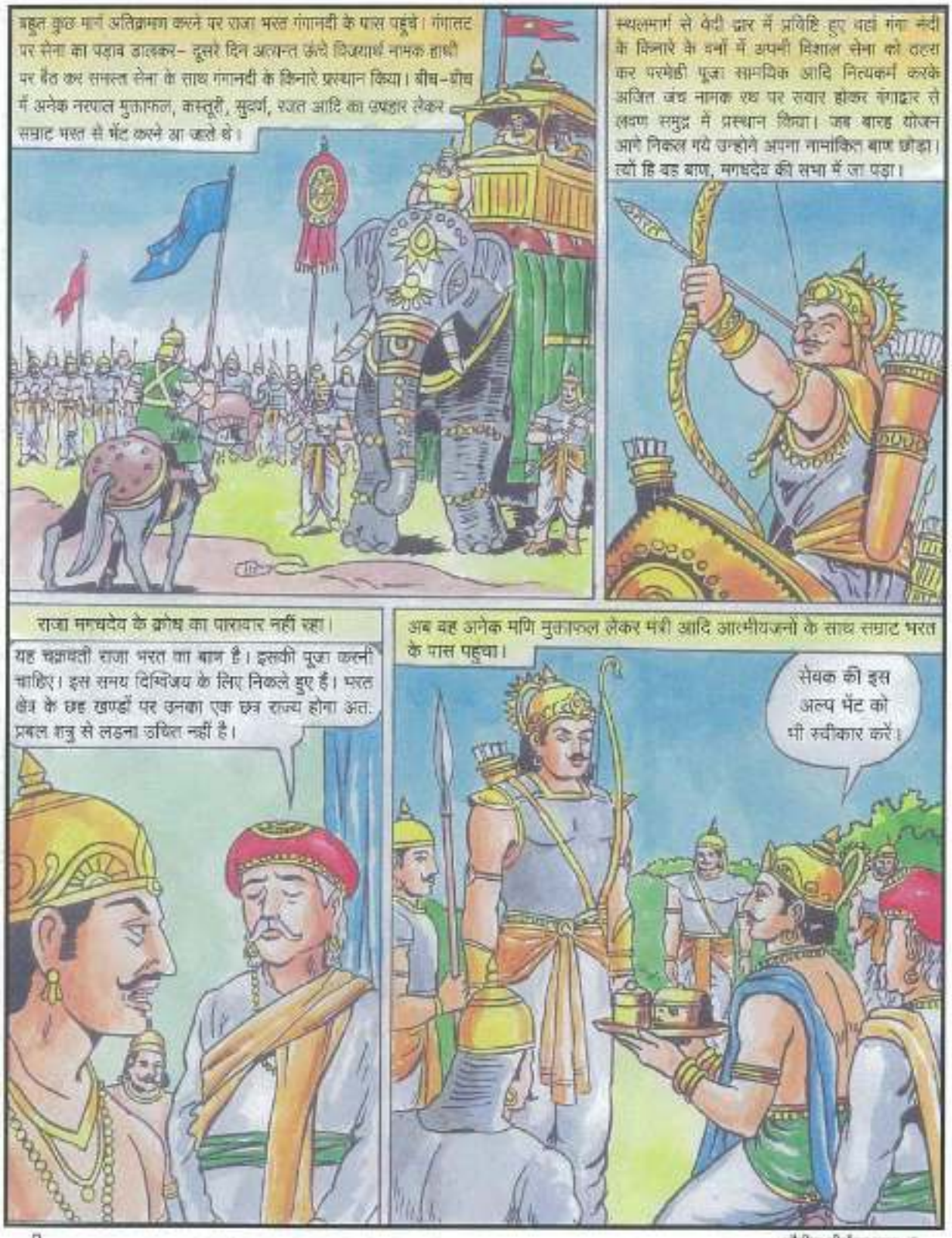
बहुत कुछ मार्ग अतिक्रमण करने पर राजा भरत गंगानदी के पास पहुंचे। गंगातट पर सेना का पड़ाव डालकर- दूसरे दिन अत्यन्त ऊंचे विजयार्ध नामक हाथी पर बैठ कर समस्त सेना के साथ गंगानदी के किनारे प्रस्थान किया। बीच-बीच में अनेक नरपाल मुक्ताफल, कस्तूरी, सुवर्ण, रजत आदि का उपहार लेकर सम्राट भरत से भेंट करने आ जाते थे।
स्थलमार्ग से वेदी द्वार में प्रविष्टि हुए वहां गंगा नदी के किनारे के वनों में अपनी विशाल सेना को ठहरा कर परमेष्ठी पूजा सामयिक आदि नित्यकर्म करके अजित जंत्र नामक रथ पर सवार होकर गंगाद्वार से लवण समुद्र में प्रस्थान किया। जब बारह योजन आगे निकल गये उन्होंने अपना नामांकित बाण छोड़ा। ज्यों हि वह बाण, मगधदेव की सभा में जा पड़ा।
राजा मगधदेव के क्रोध का पारावार नहीं रहा।
यह चक्रवर्ती राजा भरत का बाण है। इसकी पूजा करनी चाहिए। इस समय दिग्विजय के लिए निकले हुए हैं। भरत क्षेत्र के छह खण्डों पर उनका एक छत्र राज्य होना अत: प्रबल शत्रु से लड़ना उचित नहीं है।
अब वह अनेक मणि मुक्ताफल लेकर मंत्री आदि आत्मीयजनों के साथ सम्राट भरत के पास पहुंचा।
सेवक की इस अल्प भेंट को भी स्वीकार करें।

चक्रवर्ती भरत विजय प्राप्तकर शिविर वापिस आ गये। सेना ने हर्ष ध्वनि से समस्त आकाश गुंजायमान कर दिया। फिर दक्षिण दिशा के राजाओं को वश में करने के लिए प्रस्थान किया। अनेक देशों के राजाओं को अपने आधीन बनाते हुए सम्राट भरत इष्ट स्थान पर पहुंचे। मनोहर वन में सेना को रुकवाकर वैजयन्त महाद्वार से दक्षिण लवणोदधि में प्रवेश किया बारह योजन दूर जाकर उसके अधिपति व्यन्तर देव को पराजित कर वापस आ गये।

दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में विजय प्राप्त करने के बाद राजा भरत उत्तर दिशा की ओर चले। अब उनकी सेना अत्यधिक बढ़ गयी थी। क्यों कि मार्ग में मिलने वाले अनेक राजा मित्र होकर अपनी-अपनी सेना लेकर उन्हीं के साथ मिल जाते थे। उनकी जय ध्वनि सुनकते ही शत्रु राजाओं के दिल दहल जाते थे।

चलते-चलते चक्रवर्ती भरत विजयार्ध पर्वत के पास पहुंचे। सेना को रुकवाकर मंत्री की आराधना में लग गये। कुछ समय बाद वहां का देव राजा भरत से मिलने के लिए आया।

समस्त सेना सहित प्रस्थान कर विजयार्ध गिरि की पश्चिम गुफा के पास आये सेना ने वन में शिविर डाल दिया। वहां के अनेक राजे उपहार लेकर उनसे मिलने आये। उधर विजयार्ध का स्वामी कृतमाल देव भी स्वागत के लिए आ गया।

इस प्रकार सम्राट भरत की सेना सभी दिशाओं के राजाओं को जीत कर आगे बढ़ी जा रही थी। उनका सेनापति हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ का पुत्र जयकुमार था। वह बड़ा वीर बहादुर व निर्मल बुद्धि वाला था। उसने घूम-घूम कर समस्त म्लेच्छ खण्डों में चक्रवर्ती भरत का शासन प्रतिष्ठित किया। अब चक्रवर्ती भरत समस्त सेना सहित मध्यम खण्ड को जीतने चल पड़े। उनके दो म्लेच्छ राजाओं ने सामना किया। उन्होंने नाग देवों का आह्वान किया। नागदेव मेघों का रूप बनाकर समस्त आकाश में फैल गये। मुसलाधार जल बरसाने लगे।

सम्राट की आज्ञा से गणबद्ध देवों ने अप्रतिम हुंकार भरी। उसी समय पराक्रमी जयकुमार ने दिव्यधनुष से समस्त नागों को भगा दिया।

जब नागदेव भाग गये म्लेच्छ राजा हार मान कर सम्राट से मिलने आये। उपहार देकर गये।

कुछ दिन चलकर हिमवत पर्वत के समीप पहुंचे चक्र रत्न की पूजा की व अनेक मंत्रों की आराधना करके वज्रमय धनुष लेकर हिमवत पर्वत के शिखर को लक्ष्य अमोघ बाण छोड़ा। उसके प्रताप से वहां रहने वाला देव नम्र होकर राजा भरत से मिलने आया। वहां से लौटकर वृषभाचल पर्वत पर पहुंचे। सम्राट भरत ने वहां पहुंच कर अपनी कीर्ति प्रशस्ति लिखनी चाही, पर उन्हें कोई शिला तल खाली नहीं मिला। जिस पर किसी का नाम अंकित नहीं हो।

अब तक राजा भरत का हृदय दिग्विजय के अभिमान से फूला न समाता था।

अरे यहां तो मेरे से पहले अनेक चक्रवर्ती राजा हो चुके हैं। मेरा यह अभिमान तो झूठा है।

निदान उन्होंने एक शिला पर दूसरे राजा की प्रशस्ति मिटा कर अपनी प्रशस्ति लिखवादी। संसार के समस्त प्राणी स्वार्थ साधन में तत्पर रहा करते हैं।

वृषभाचल से लौटकर गंगा द्वार पर आये गंगा देवी ने अभिषेक कर उन्हें अनेक रत्नों के आभूषण भेंट किये। फिर विजयार्ध गिरि के पास आये, इसी बिच विद्याधरों के राजा नमिन वन में अनेक उपहार लेकर सम्राट से भेंट करने आये। राजा नमि ने उनके साथ अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह कर दिया।

वहां से चल कर सम्राट भरत कैलाश गिरि पहुंचे। कैलाश गिरि के गगन चुम्बी धवल शिखरों के सौन्दर्य से सम्राट मुग्ध हो गये।

कैलाशगिरि से लौटकर राजा भरत ने राजधानी अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। दिग्विजय चक्रवर्ती भरत के स्वागत के लिए अयोध्या नगरी खूब सजाई गई थी। समस्त नगरवासी एवं आस पास के बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजे उनकी अगवानी के लिए गये थे। अपने प्रति प्रजा का असाधारण प्रेम देख कर सम्राट भरत अत्यधिक प्रसन्न हुए। वे सब लोगों के साथ अयोध्यापुरी में प्रवेश करने के लिए चले। सब लोगों के आगे चक्र चल रहा था।

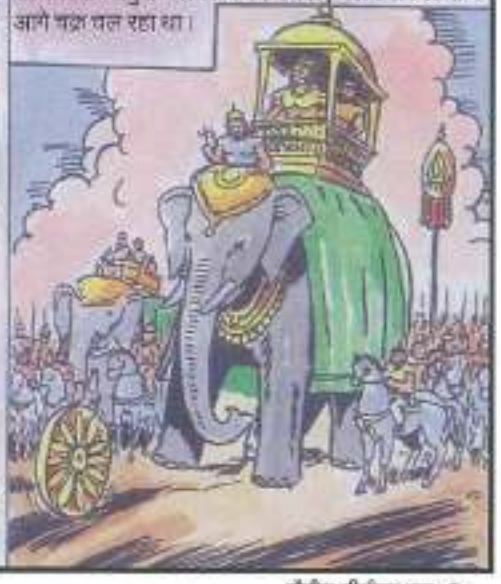

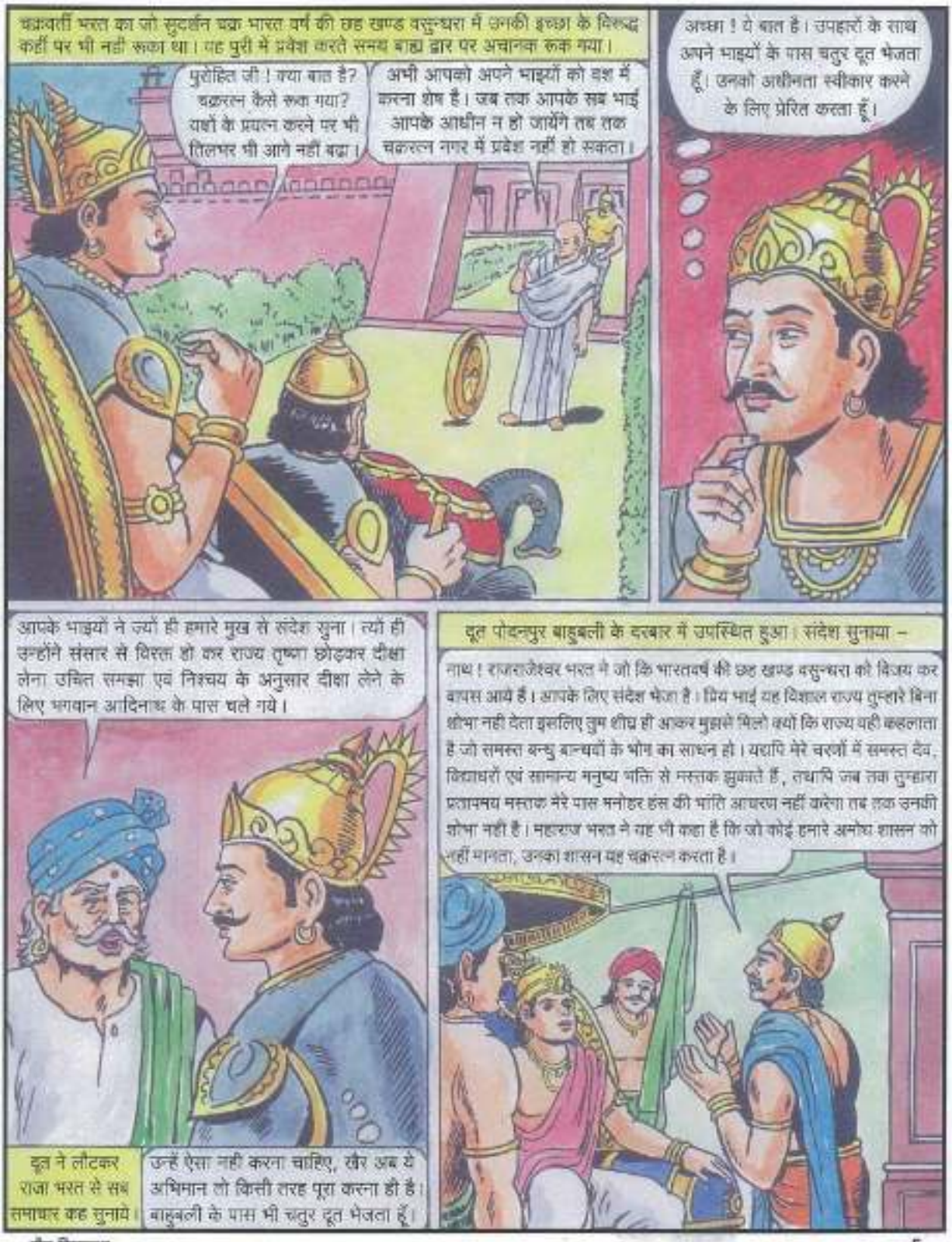
चक्रवर्ती भरत का जो सुदर्शन चक्र भारत वर्ष की छह खण्ड वसुन्धरा में उनकी इच्छा के विरुद्ध कहीं पर भी नहीं रुका था। वह पुरी में प्रवेश करते समय बाह्य द्वार पर अचानक रुक गया।
पुरोहित जी ! क्या बात है? चक्ररत्न कैसे रुक गया? यत्नों के प्रयत्न करने पर भी तिलभर भी आगे नहीं बढ़ा।
अभी आपको अपने भाइयों को वश में करना शेष है। जब तक आपके सब भाई आपके आधीन न हो जायेंगे तब तक चक्ररत्न नगर में प्रवेश नहीं हो सकता।
अच्छा ! ये बात है। उपहारों के साथ अपने भाइयों के पास चतुर दूत भेजता हूँ। उनको आधीनता स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता हूँ।
आपके भाइयों ने ज्यों ही हमारे मुख से संदेश सुना। त्यों ही उन्होंने संसार से विरक्त हो कर राज्य तृष्णा छोड़कर दीक्षा लेना उचित समझा एवं निश्चय के अनुसार दीक्षा लेने के लिए भगवान आदिनाथ के पास चले गये।
दूत ने लौटकर राजा भरत से सब समाचार कह सुनाये।
उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, खैर अब ये अभिमान तो किसी तरह पूरा करना ही है। बाहुबली के पास भी चतुर दूत भेजता हूँ।
दूत पोदनपुर बाहुबली के दरबार में उपस्थित हुआ। संदेश सुनाया –
नाथ ! राजराजेश्वर भरत ने जो कि भारतवर्ष की छह खण्ड वसुन्धरा को विजय कर वापस आये हैं। आपके लिए संदेश भेजा है। प्रिय भाई यह विशाल राज्य तुम्हारे बिना शोभा नहीं देता इसलिए तुम शीघ्र ही आकर मुझसे मिलो क्यों कि राज्य वही कहलाता है जो समस्त बन्धु बान्धवों के भोग का साधन हो। यद्यपि मेरे चरणों में समस्त देव, विद्याधरों एवं सामान्य मनुष्य भक्ति से मस्तक झुकाते हैं, तथापि जब तक तुम्हारा प्रतापमय मस्तक मेरे पास मनोहर हंस की भांति आचरण नहीं करेगा तब तक उनकी शोभा नहीं है। महाराज भरत ने यह भी कहा है कि जो कोई हमारे अमोघ शासन को नहीं मानता, उनका शासन यह चक्ररत्न करता है।

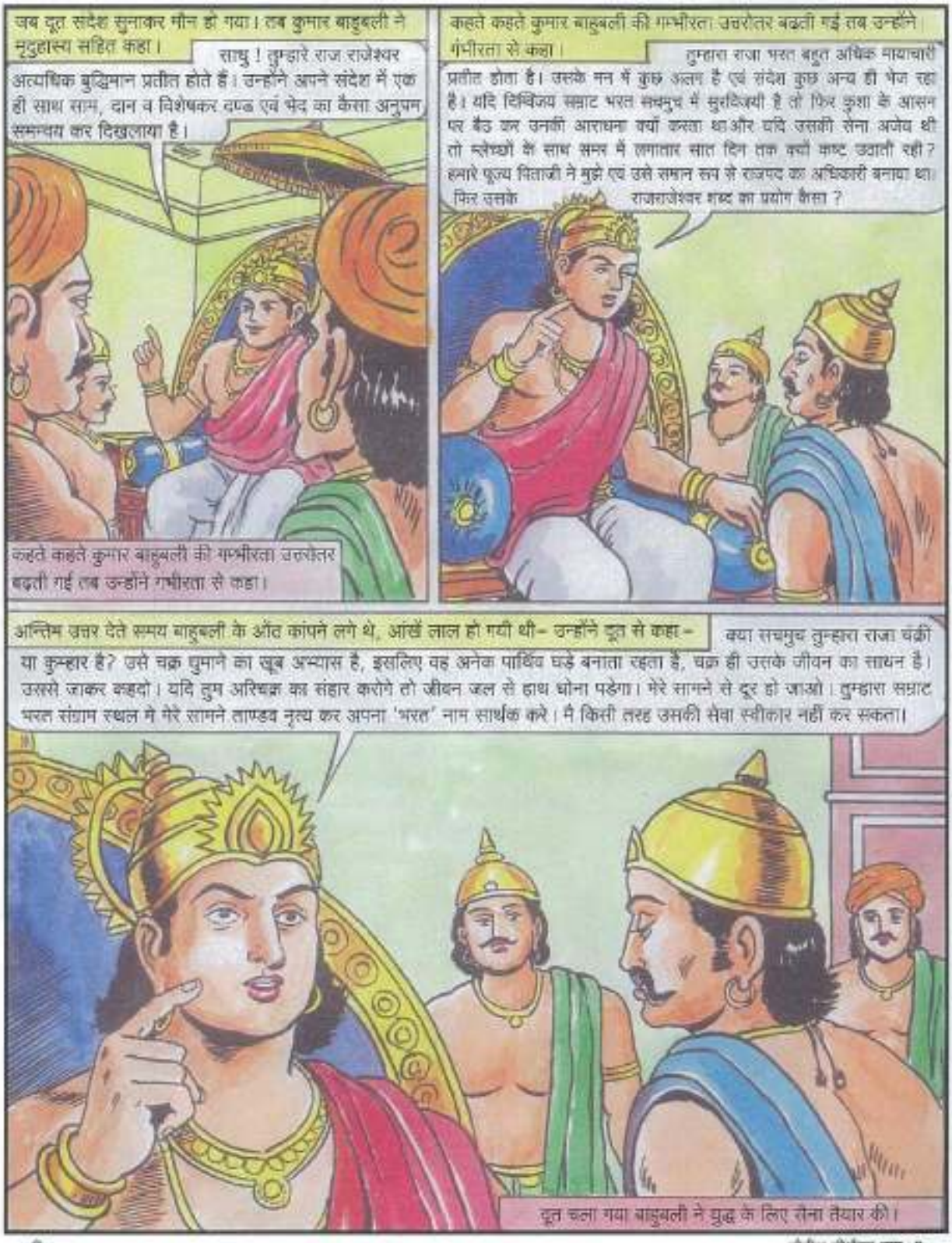
जब दूत संदेश सुनाकर मौन हो गया। तब कुमार बाहुबली ने मृदुहास्य सहित कहा।
साधु ! तुम्हारे राज राजेश्वर अत्यधिक बुद्धिमान प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपने संदेश में एक ही साथ साम, दान व विशेषकर दण्ड एवं भेद का कैसा अनुपम समन्वय कर दिखलाया है।
कहते कहते कुमार बाहुबली की गम्भीरता उत्तरोत्तर बढ़ती गई तब उन्होंने गंभीरता से कहा।
कहते कहते कुमार बाहुबली की गम्भीरता उत्तरोत्तर बढ़ती गई तब उन्होंने गंभीरता से कहा।
तुम्हारा राजा भरत बहुत अधिक मायाचारी प्रतीत होता है। उसके मन में कुछ अलग है एवं संदेश कुछ अन्य ही भेज रहा है। यदि दिग्विजय सम्राट भरत सचमुच में सुरविजयी है तो फिर कुशा के आसन पर बैठ कर उनकी आराधना क्यों करता था और यदि उसकी सेना अजेय थी तो म्लेच्छों के साथ समर में लगातार सात दिन तक क्यों कष्ट उठाती रही? हमारे पूज्य पिताजी ने मुझे एवं उसे समान रूप से राजपद का अधिकारी बनाया था। फिर उसके राजराजेश्वर शब्द का प्रयोग कैसा ?
अन्तिम उत्तर देते समय बाहुबली के ओंठ कांपने लगे थे, आंखें लाल हो गयी थी- उन्होंने दूत से कहा -
क्या सचमुच तुम्हारा राजा चक्री या कुम्हार है? उसे चक्र घुमाने का खूब अभ्यास है, इसलिए वह अनेक पार्थिव घड़े बनाता रहता है, चक्र ही उसके जीवन का साधन है। उससे जाकर कहदो। यदि तुम अरिचक्र का संहार करोगे तो जीवन जल से हाथ धोना पड़ेगा। मेरे सामने से दूर हो जाओ। तुम्हारा सम्राट भरत संग्राम स्थल में मेरे सामने ताण्डव नृत्य कर अपना 'भरत' नाम सार्थक करे। मैं किसी तरह उसकी सेवा स्वीकार नहीं कर सकता।
दूत चला गया बाहुबली ने युद्ध के लिए सेना तैयार की।

इधर दूत ने आकर सम्राट भरत से सब समाचार कह सुनाये तब वे भी युद्ध के लिए सेना लेकर पोदनपुर जा पहुंचे। भाई-भाई का यह युद्ध किसी को अच्छा नहीं लगा। दोनों पक्ष के बुद्धिमान मंत्रियों ने दोनों को लड़ने से रोका, पर राज्य लिप्सा एवं अभिमान से भरे हुए उनके हृदयों में किसी के भी वचन स्थान नहीं पा सके। अन्त में दोनों ओर के मंत्रियों ने एक मत होकर सम्राट भरत एवं राजा बाहुबली से निवेदन किया।

मंत्रियों का सुझाव दोनों भाइयों को योग्य प्रतीत हुआ इसलिए उन्होंने अपनी -अपनी सेनाओं को युद्ध करने से रोक दिया।

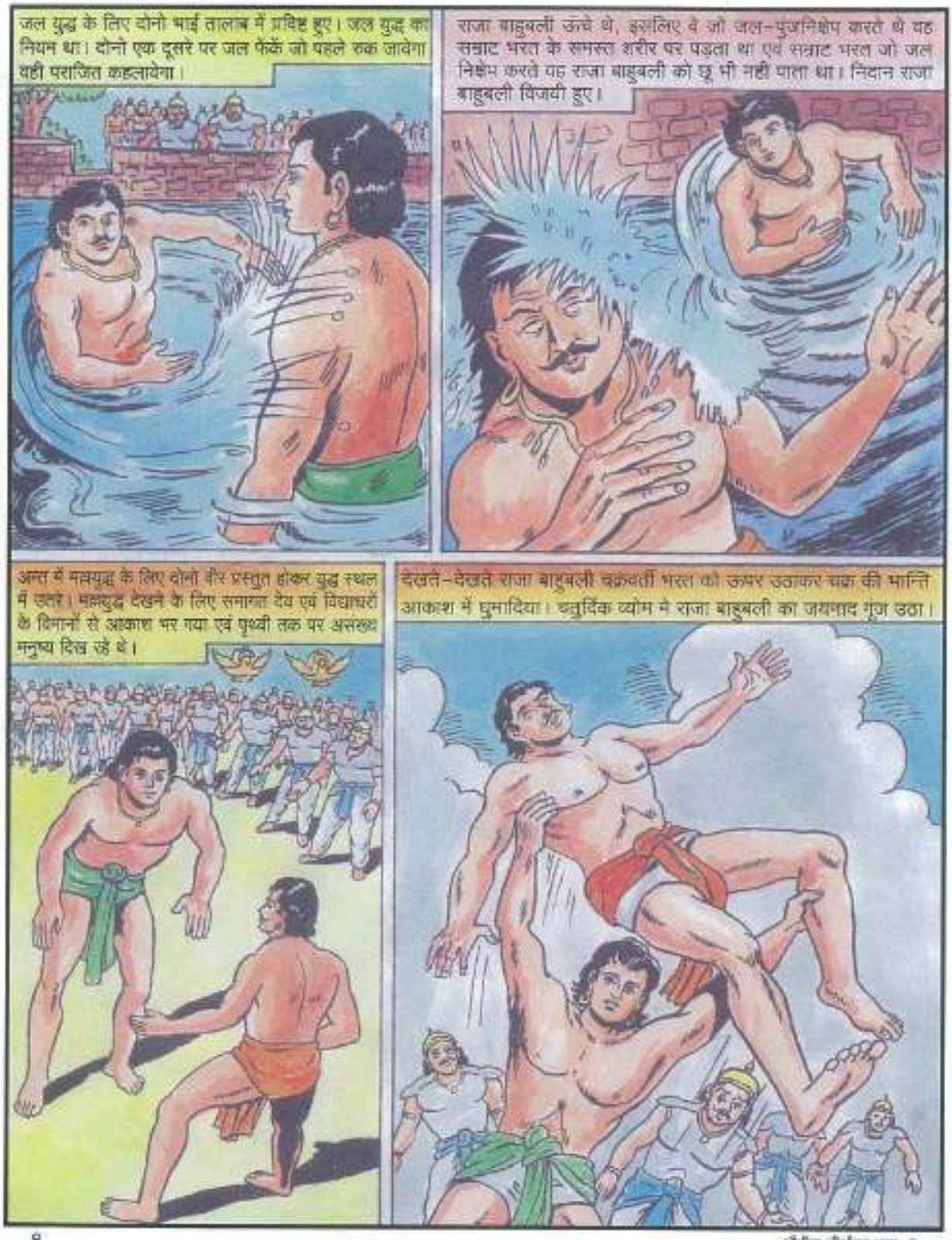
जल युद्ध के लिए दोनो भाई तालाब में प्रविष्ट हुए। जल युद्ध का नियम था। दोनो एक दूसरे पर जल फेंकें जो पहले रुक जावेगा वही पराजित कहलायेगा।
राजा बाहुबली ऊंचे थे, इसलिए वे जो जल-पुञ्जनिक्षेप करते थे वह सम्राट भरत के समस्त शरीर पर पड़ता था एवं सम्राट भरत जो जल निक्षेप करते वह राजा बाहुबली को छू भी नही पाता था। निदान राजा बाहुबली विजयी हुए।
अन्त में मल्लयुद्ध के लिए दोनो वीर प्रस्तुत होकर युद्ध स्थल में उतरे। मल्लयुद्ध देखने के लिए समस्त देव एवं विद्याधरों के विमानों से आकाश भर गया एवं पृथ्वी तक पर असंख्य मनुष्य दिख रहे थे।
देखते-देखते राजा बाहुबली चक्रवर्ती भरत को ऊपर उठाकर चक्र की भान्ति आकाश में घुमादिया। चतुर्दिक व्योम मे राजा बाहुबली का जयनाद गूंज उठा।

चक्रवर्ती भरत को अपना अपमान सहन नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने क्रोध में आकर भाई बाहुबली के ऊपर सुदर्शन चक्र चला दिया, जो कि दिग्विजय के समय किसी के भी ऊपर नहीं चलाया गया था। पुण्य के प्रताप से चक्ररत्न राजा बाहुबली का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका, वह उनकी तीन प्रदक्षिणाएं देकर सम्राट भरत के पास वापस लौट आया। जब सम्राट ने चक्र चलाया था, तब सब ओर से धिक-धिक की ध्वनी आ रही थी। बड़े भाई सम्राट भरत का यह नृशंस व्यवहार देखकर राजा बाहुबली का मन संसार से एकदम उदासीन हो गया।

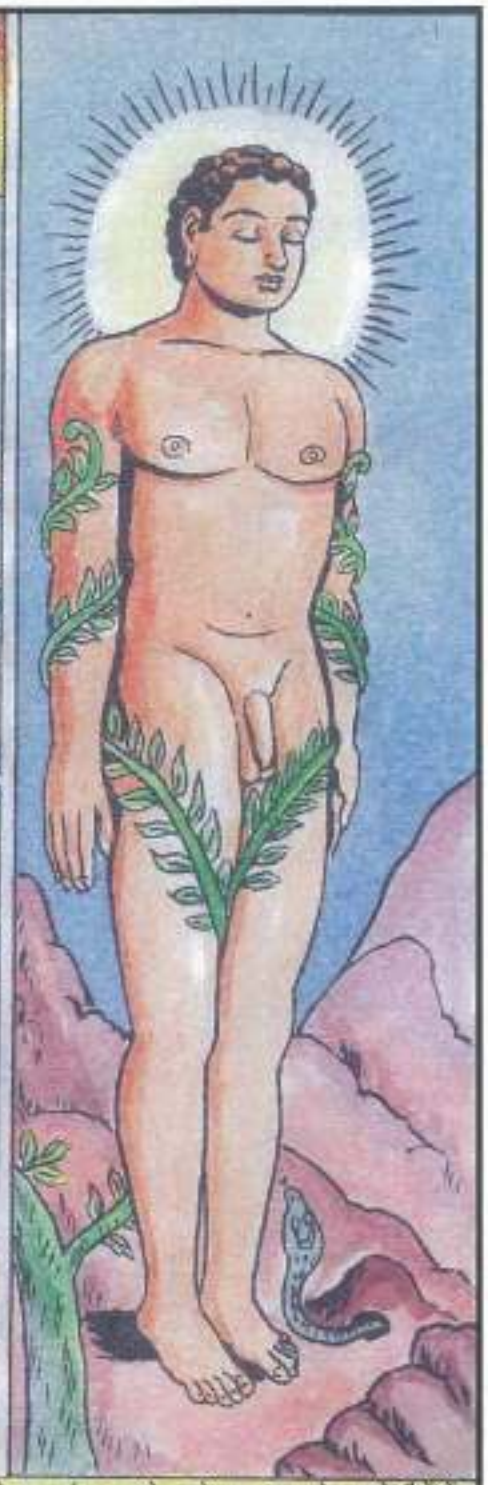

ऐसा विचार कर उन्होंने अपने पुत्र महाबली को राज्य सौंप कर जिन दीक्षा ले ली। वे एक वर्ष तक खड़े-खड़े ध्यान मग्न रहे। उनके पैरों में अनेक वन लताएँ एवं सांप लिपट गये थे, फिर भी वे ध्यान से विचलित नहीं हुए। एक वर्ष के बाद उन्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया। जिसके प्रताप से वे तीनों लोकों को एक साथ जानने व देखने लगे थे। एवं अंत में देहत्याग कर वे इस काल में सबसे पहले मोक्ष धाम को गये।

इधर जब क्रोध का वेग शान्त हुआ। तब राजा भरत भी कुमार बाहुबली के विषय में अत्यधिक दुखी हुए। किन्तु उपाय ही क्या था? समस्त पुत्रवधुओं व सेना के साथ लौटकर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया। वहाँ समस्त राजाओं ने मिलकर राजा भरत का राज्याभिषेक किया। उन्हें राजाधिराज सम्राट के रूप में स्वीकार किया। अब वे निष्कंटक होकर समस्त पृथ्वी का शासन करने लगे। सम्राट भरत ने राज्य रक्षा के लिए समस्त राजाओं को राजधर्म श्रावक धर्म का उपदेश दिया था। जिसके अनुसार प्रवृत्ति करने से राजा एवं प्रजा सभी सुखी रहते थे एवं राजा की भलाई में प्राण देने के लिए तैयार रहते थे। इस तरह सम्राट भरत अपनी स्त्री रत्न सुभद्रा के साथ त्रिविधप्रकार का ऐश्वर्य भोगते हुए सुख से समय बिताते थे। एक दिन उन्होंने विचार-

मैंने जो इतनी विपुल सम्पत्ति इकट्ठी की है, उसका क्या होगा? बिना दान किये। इसकी शोभा नहीं है। पर दान दिया भी किसे जावे? मुनिराज तो संसार से सर्वथा निस्पृह हैं, इसलिए वे न तो धन धान्य आदि का दान ले सकते हैं, न उन्हें देने की आवश्यकता ही है। वे केवल भोजन की इच्छा रखते हैं। तो गृहस्थ उनकी इच्छापूर्ण कर देते हैं। हां गृहस्थ धन धान्य आदि का दान ले सकते हैं, पर अव्रती गृहस्थ को दान देने से लाभ ही क्या होगा? इसलिए अच्छा यही होगा कि प्रजा में से कुछ दान पात्रों का चयन किया जावे। जो योग्य हों उन्हें दान देकर इस विशाल सम्पत्ति को सफल बनाया जावे। ये लोग दान लेकर आजीविका की चिन्ता से निर्निमुक्त धर्म का प्रचार करेंगे एवं पठन-पाठन की प्रवृत्ति करेंगे।

यह सोच कर जिनेश्वर जिनेश्वर प्रजा को राज मन्दिर में आने के लिए आमन्त्रित किया राज मन्दिर के आगे मार्ग में हरी-हरी दूब लगवा दी, जब दरबारी लोगों ने मंदिर के द्वार पर मनुष्य पर यह हरी दूब देखी, तब वे द्वार रक्षा के लिए आगे न बढ़ कर वहीं रुक गये। पर जो ऊपरी थे वे पैरों तले दूब को कुचलते हुए भीतर पहुंच गये।

सम्राट भरत ने प्रजावर्ती मनुष्यों को बुलाकर खड़े हुए देख तो उन्हें दूसरे अनुकूल वर्ण से पुजवा कर उनका यथेष्ट सत्कार किया। गृहस्थोपयोगी समस्त क्रिया कलाप, संस्कार अध्ययन कार्य आदि का उपदेश देकर यज्ञोपवीत प्रदान किये एवं उनके उन्हें 'वर्णोत्तम ब्राह्मण' नाम से प्रसिद्ध किया। भगवान वृषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण की स्थापना की थी, अब राजा भरत ने 'वर्णोत्तम ब्राह्मण' वर्ण की स्थापना की। इस तरह सृष्टि की लौकिक एवं धार्मिक व्यवहार के लिए चार वर्णों की स्थापना हुई थी।

एक दिन राजा भरत ने रात्रि के पिछले प्रहर में कुछ अद्भुत स्वप्न देखे जिससे वे उद्विग्न से हो गये। स्वप्नों का फल जानने के लिए वे भगवान आदिनाथ के समवशरण में पहुंचे।

हे त्रिभुवन गुरो ! धर्ममार्ग के प्रवर्तक। आपके रहते हुए भी मैंने अपनी बुद्धि-मंदता से ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की है, उसमें कुछ हानि तो न होगी ?

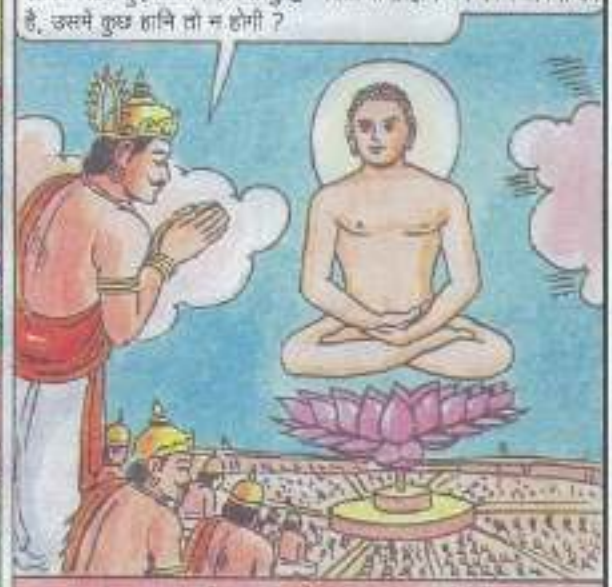

रात्रि के स्वप्न उन्हें कह सुनाये, उनका फल जानना चाहा।

भगवान आदिनाथ ने दिव्य वाणी में कहा-

वत्स ! यद्यपि इस समय ब्राह्मणों की पूजा श्रेयस्करी है। उससे कोई हानि नहीं है, तथापि कालान्तर में वह दोष का कारण होगी। यही लोग कलिकाल में सम्मीचीन धर्म मार्ग में जाति अंहकार से विद्वेष करेंगे।

हे वत्स ! पृथ्वीतल में विहार करने के उपरान्त पर्वत के शिखरों पर बैठे तेइस सिंहों के देखने का फल- आरम्भ में तेइसतीर्थंकरों के समय में दुर्नय की उत्पत्ती नहीं होगी पर दूसरे स्वप्न में एक सिंह बालक के साथ जो हाथी खड़ा देखा है, उससे प्रतीत होता है कि अंतिम तीर्थंकर महावीर के तीर्थ में कुलिंगी साधु अनेक दुर्नय प्रकट करेंगे।

हाथी के भार से जिसकी पीठ झुक गई ऐसे घोड़े को देखने से यह प्रकट होता है कि पंचम काल के साधु तप का भार सहन नहीं कर सकेंगे, सूखे पत्ते खाते हुए बकरों को देखना बताता है कि कलिकाल में मनुष्य सदाचार को छोड़कर दुराचारी हो जायेंगे।

मदोन्मत्त हाथी की पीठ पर बैठा हुआ बंदर इस बात का प्रतीक है कि दु:षमाकाल में अकुलिन मनुष्य शासन करेंगे।

कौओं के द्वारा उल्लुओं का मारा जाना बताता है कि मनुष्य कालान्तर में सुख प्रदायक जैन-धर्म को छोड़ कर दूसरे मतों का अवलम्बन करने लगेंगे।

नृत्य करते भूतों को देखने से प्रतीत होता है कि आगे चलकर देवों के लोग व्यन्तरों को ही देव समझ कर पूजा करेंगे।

जिसका मध्य भाग सूखा व अलगाल जल भरा हुआ है ऐसे तालाब देखने का फल कालान्तर में मध्य खण्ड में संघर्ष का अभाव हो जायेगा एवं आलगाल स्थिर रहेगा।

धूलि धूसरत्नों को देखने से ज्ञात होता है दु:षमा काल में मूर्तियों के ऋद्धियां उत्पन्न नहीं होंगी।

कुत्ते का सत्कार देखना यह बताता है कि आगे चल कर व्रत रहित ब्राह्मण पूजे जायेंगे।

घूमते हुए जवान बैल को देखने का फल है कि मनुष्य युवावस्था में ही मुनिव्रत धारण करेंगे।

चन्द्रमा के घेरा देखने से लगता है कि कलिकाल में मुनियों को अवधिज्ञान प्राप्त नहीं होगा।

परस्पर मिल कर जाते बैलों को देखने से लगता है कि साधु एकाकी विहार नहीं कर सकेंगे।

सूर्य का मेघों में छिप जाना बतलाता है कि पंचम काल में प्राय: केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा।

सूखा वृक्ष देखने से प्रकट होता है कि पुरुष एवं स्त्रियां चरित्र से च्युत हो जायेंगे। वृक्षों के जीर्ण पत्तों को देखने से लगता है पंचम काल में महौषधियां तथा रस आदि नष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार स्वप्नों का फल बतलाकर चक्रवर्ती भरत आदि समस्त श्रोताओं को विघ्न शान्ति के लिए धर्म में दृढ़ रहने का उपदेश दिया- महाराज भरते अयोध्या लौट गये।

केवल ज्ञान से शोभायमान वृषभदेव पौष मास की पूर्णिमा के दिन कैलाश पर्वत पर जा पहुंचे- अचल हो कर आत्म ध्यान में लीन हो गये। सम्राट भरत उसी समय सपरिवार कैलाश गिरि पहुंचे एवं चौदह दिन तक पूजा करते रहे। माघ कृष्ण चतुर्दशी प्रात: उनकी आत्मा लोकाग्र लोक शिखर पर पहुंच गई शरीर देखते -देखते विलीन हो गया। केवल नख तथा केश बचे थे। सब देवों ने मिलकर उनका अंतिम संस्कार किया। भगवान वृषभदेव का निर्वाण महोत्सव मनाया।

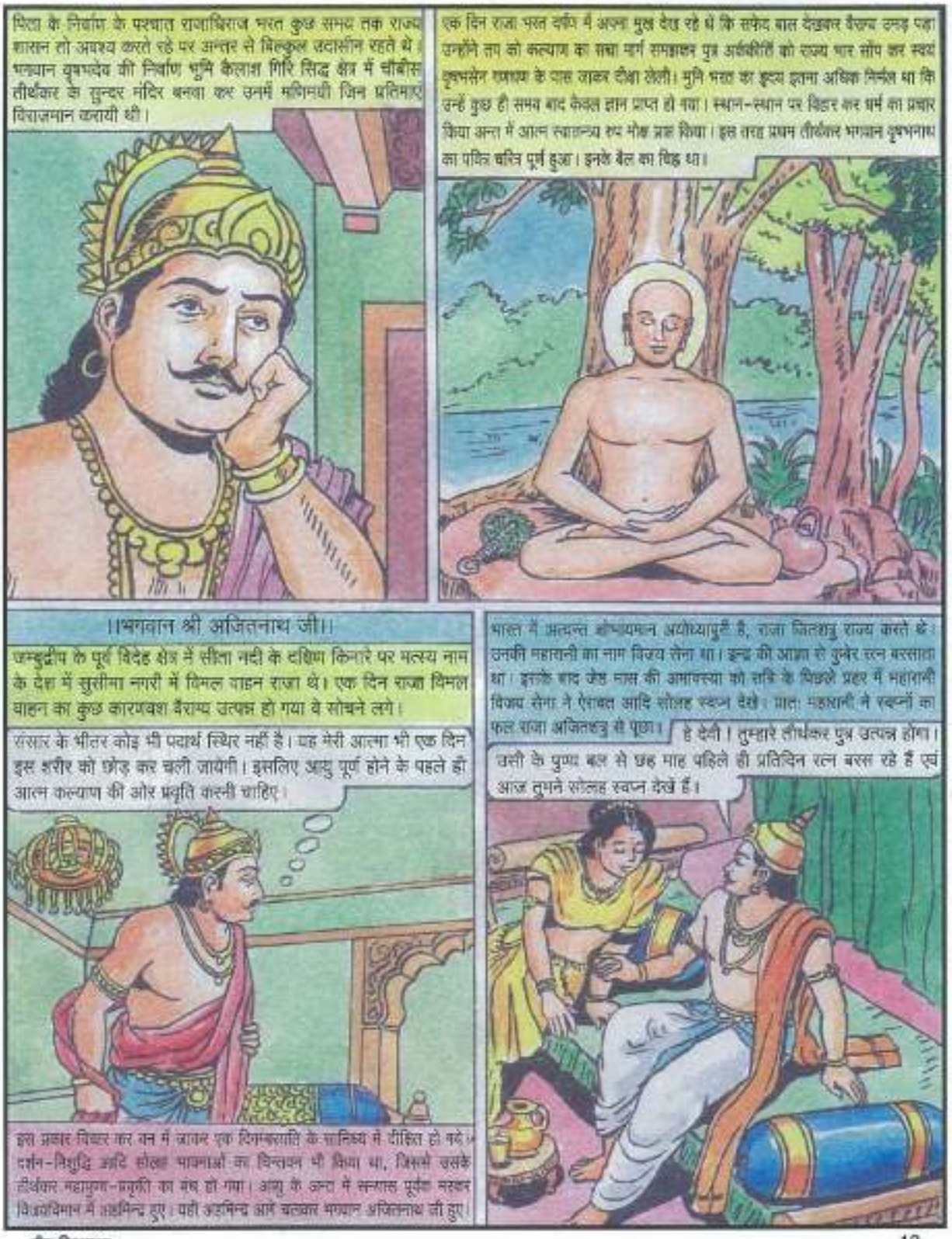
पिता के निर्वाण के पश्चात राजाधिराज भरत कुछ समय तक राज्य शासन तो अवश्य करते रहे पर अन्तर से बिल्कुल उदासीन रहते थे। भगवान वृषभदेव की निर्वाण भूमि कैलाश गिरि सिद्ध क्षेत्र में चौबीस तीर्थंकर के सुन्दर मंदिर बनवा कर उनमें मणिमयी जिन प्रतिमाएं विराजमान करायी थी।
एक दिन राजा भरत दर्पण में अपना मुख देख रहे थे कि सफेद बाल देखकर वैराग्य उमड़ पड़ा उन्होंने तप को कल्याण का सच्चा मार्ग समझकर पुत्र अर्ककीर्ति को राज्य भार सौंप कर स्वयं वृषभसेन गणधर के पास जाकर दीक्षा ले ली। मुनि भरत का हृदय इतना अधिक निर्मल था कि उन्हें कुछ ही समय बाद केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। स्थान-स्थान पर विहार कर धर्म का प्रचार किया अन्त में आत्म स्वातन्त्र्य रूप मोक्ष प्राप्त किया। इस तरह प्रथम तीर्थंकर भगवान वृषभनाथ का पवित्र चरित पूर्ण हुआ। इनके बैल का चिह्न था।
।।भगवान श्री अजितनाथ जी।।
जम्बुद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण किनारे पर मत्स्य नाम के देश में सुसीमा नगरी में विमल वाहन राजा थे। एक दिन राजा विमल वाहन का कुछ कारणवश वैराग्य उत्पन्न हो गया वे सोचने लगे।
संसार के भीतर कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। यह मेरी आत्मा भी एक दिन इस शरीर को छोड़ कर चली जायेगी। इसलिए आयु पूर्ण होने के पहले ही आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्ति करनी चाहिए।
इस प्रकार विचार कर मन में जागर एक दिगम्बराचार्य के सान्निध्य में दीक्षित हो गये। दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन भी किया था, जिससे उसके तीर्थंकर महापुण्य-प्रकृति का बंध हो गया। आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक नश्वर विजयविमान में अहमिन्द्र हुए। यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान अजितनाथ जी हुए।
भारत में अत्यन्त शोभायमान अयोध्यापुरी है, राजा जितशत्रु राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम विजय सेना था। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर रत्न बरसाता था। इसके बाद जेठ मास की अमावस्या को रात्रि के पिछले प्रहर में महारानी विजय सेना ने ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे। प्रातः महारानी ने स्वप्नों का फल राजा अजितशत्रु से पूछा।
हे देवी! तुम्हारे तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न होगा। उसी के पुण्य बल से छह माह पहिले ही प्रतिदिन रत्न बरस रहे हैं एवं आज तुमने सोलह स्वप्न देखे हैं।

माघ शुक्ला दशमी के दिन महारानी विजयसेना ने पुत्र रत्न को प्रसव किया। यह पुत्र जन्म से ही मति-श्रुति एवं अवधि इन तीनों ज्ञानों से शोभायमान था। उसी समय देवों ने सुमेरु पर्वत पर लेजाकर उनका जन्माभिषेक किया एवं अजित नाम रखा। भगवान अजितनाथ धीरे-धीरे बढ़ने लगे। आपस के खेल कूद में भी जब इनके भाई इनसे पराजित हो जाते थे तब से इनका नाम अजित सार्थक मानने लगे थे।

ये बहुत ही वीर एवं क्रीड़ा चतुर पुरुष थे। युवावस्था में इनके शरीर की शोभा देखते ही बनती थी। महाराज जितशत्रु ने अनेक सुन्दरी कन्याओं के साथ इनका विवाह कर दिया एवं शुभ मुहूर्त में राज्य भार सौंप कर स्वयं धर्म सेवन करते हुए सद्गति को प्राप्त हुए। भगवान अजित नाथ ने प्रजा का पालन किया। सम्पदाओं में अनेक सुधार किये।

एक दिन भगवान अजितनाथ महल की छतपर बैठे हुए थे कि उन्होंने दमकती हुई विद्युत को अचानक नीचे गिरकर नष्ट होते हुए देखा। उसे देख कर उनका हृदय विषयों से विरक्त हो गया। वे सोचने लगे...

संसार का हर एक पदार्थ इसी विद्युत की तरह क्षणभंगुर है। मेरा यह सुन्दर शरीर एवं यह मनुष्य पर्याय भी एक दिन इसी तरह नष्ट हो जायेंगे। जिस उद्देश्य के लिए मेरा जन्म हुआ था। उसके लिए तो मैंने अभी तक कुछ भी नहीं किया। अपनी आयु का बहुभाग व्यर्थ ही खो दिया। अब आज से मैं सर्वथा विरक्त हो कर दिगम्बर मुद्रा को धारण कर वन में रहूंगा, क्यों कि इन रंग बिरंगे महलों में रहने से चित्त को शान्ति नहीं मिल सकती।

उन्होंने अपने पुत्र अजित सेन को राज्य भार सौंपा फिर वन जाने को तैयार हो गये। सुप्रभा नाम की पालकी में सवार हो गये। पालकी को मनुष्य, विद्याधर एवं देवगण उठाकर अयोध्या के सहेतुक वन में ले गये। वहाँ सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे विराजमान द्वितीय जिनेन्द्र अजितनाथ ने वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये। पंच मुट्ठियों से केश उखाड़ डाले। जिस दिन भगवान अजितनाथ ने दीक्षा धारण की थी। उस दिन माघ शुक्ल पक्ष की नवमी थी तथा रोहणी नक्षत्र का उदय था।

बारह वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्या की पौष मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन-सायंकाल रोहणी नक्षत्र के उदयकाल में 'केवलज्ञान' प्राप्त हो गया। देवों ने आकर ज्ञान कल्याण का उत्सव मनाया। अन्त में जब उनकी आयु एक महीना शेष रह गयी तब वे भी सम्मेद शिखर पर जा पहुँचे चैत्रशुक्ला पंचमी के दिन रोहणी नक्षत्र के उदयकाल में प्रातः के समय मुक्तिधाम को प्राप्त किया। भगवान अजितनाथ के हाथी का चिह्न था।

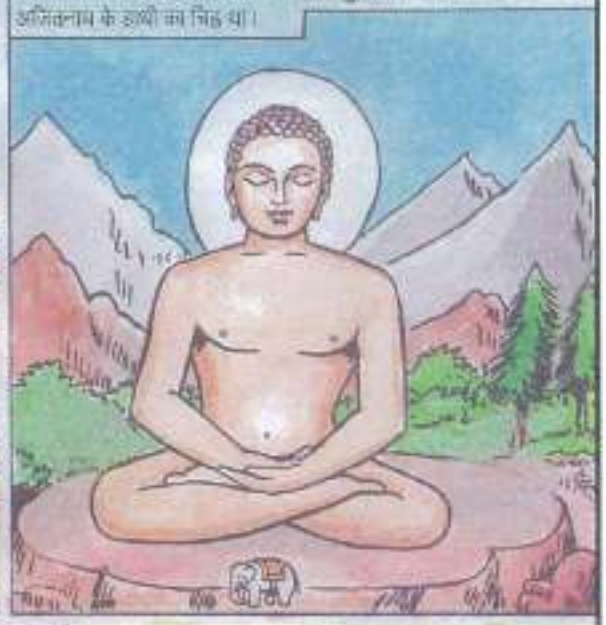

।।भगवान श्री सम्भवनाथ जी।।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीतानदी के तट पर कच्छ नाम के देश में क्षेमपुर नगर में विमलवाहन राज्य करते थे। एक दिन राजा विमलवाहन किसी कारण वश संसार से विरक्त हो गये। जिससे उन्हें पाँचों इन्द्रियों के विषय भोग काले भुजंगों की तरह दुःखदायी प्रतीत होने लगे। वे बैठकर सोचने लगे।

'यमराज' किसी भी छोटे-बड़े का भेद नहीं करता है। ऊँचे से ऊँचे एवं दीन से दीन सभी मनुष्य इसकी कराल दाढ़ों के नीचे दले जाते हैं। जब ऐसा है, तब क्या मुझे छोड़ देगा? इसलिए जब तक मृत्यु निकट नहीं आती तब तक तपस्या आदि से आत्महित की ओर प्रवृत्ति करनी चाहिए।

ऐसा सोचकर अपने पुत्र विमलकीर्ति को राज्य देकर स्वयं प्रभुसिन्धु के द्वारा दीक्षित हो गये। कठिन से कठिन तपस्याओं द्वारा आत्मशुद्धि की दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का बंध हो गया अन्त में समाधिपूर्वक शरीर त्यागकर सुदर्शन नामक विमान में अहमिन्द्र हुए। उनके जन्म से ही 'अवधिज्ञान' था। शरीर में अनेक ऋद्धियाँ थीं। वहीं अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान श्री सम्भवनाथ जी हुए थे।

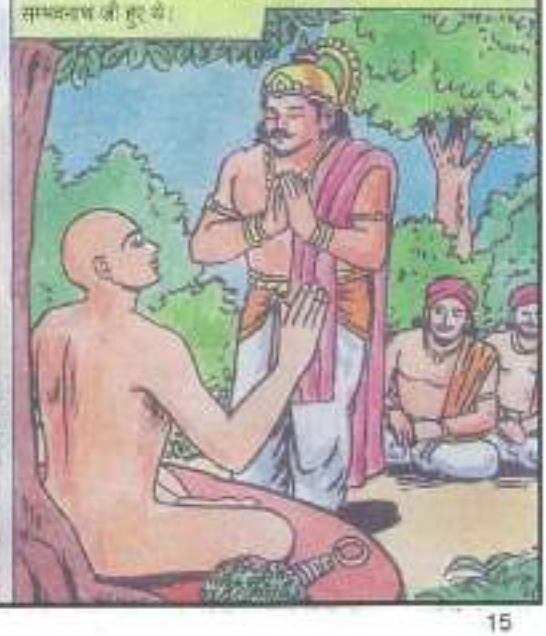

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में श्रावस्ती नगरी में दृढ़राज्य राजा थे। वे अत्यन्त प्रतापी, धर्मात्मा, सौम्य एवं साधु स्वभाव के व्यक्ति थे। अद्वितीय सुन्दरी, सुषेणा उनकी महारानी थी। राजा दृढ़राज्य के गृह पर प्रतिदिन असंख्य रत्नों की वर्षा होने लगी- अनेक शुभ शकुन होने लगे थे। जिससे राज दम्पती आनन्द से फूले न समाते थे। एक दिन रात्रि के पिछले पहर महारानी सुषेणा ने सोते समय ऐरावत हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे, मुख में प्रवेश करते हुए गन्ध सिन्दुरवत्ता हाथी को देखा। प्रातःकाल ही उसने पतिदेव से स्वप्नों का फल पूछा।

आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर पुत्र ने अवतार लिया है। पृथ्वीतल पर तीर्थंकर के जैसा पुण्य किसी का नहीं होता। देखो न वह छह महीने पहले से ही असंख्य राशि रत्न बरस रहे हैं। प्रत्येक वस्तु कितनी मनोहर हो गयी है।

कार्तिक शुक्ला पूर्णमासी के दिन मृगशिर नक्षत्र में उनके पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। देवों ने पहिले तीर्थंकरों की तरह मेरुपर्वत पर इनका भी जन्माभिषेक किया, उनका नाम भगवान सम्भवनाथ रखा गया।

भगवान सम्भवनाथ द्वितीया चन्द्रमा की तरह धीरे-धीरे बढ़ने लगे। उनके शरीर का रंग स्वर्ण के समान पीला था। दृढ़राज्य ने योग्य कुलीन कन्याओं के साथ इनका विवाह कर दिया था। समय की प्रगति को देखते हुए आपने राजनीति में बहुत परिवर्तन किया था।

एक दिन महल की छत पर प्रकृति की शोभा देख रहे थे। उनकी दृष्टि एक श्वेत बादल पर पड़ी। वायु के वेग से क्षण भर में बादल विलीन हो गया। कहीं का कहीं चला गया। उसी समय उनके चरित्र मोहनीय के बंधन ढीले हो गये, वे सोचने लगे -

संसार की सभी वस्तुएं इस बादल की तरह क्षण भंगुर हैं। एक दिन मेरा यह दिव्य शरीर भी नष्ट हो जायेगा। मैं जिन स्त्रीपुत्रों के मोह में उलझा हुआ आत्म हित की ओर प्रवृत नहीं हो रहा हूँ। वे एक भी मेरे साथ नहीं जायेंगे।

भगवान सम्भवनाथ निजपुत्र को राज्य देकर वन जाने के लिए तैयार हो गये। देवगणों ने आकर उनके तप कल्याणक का उत्सव मनाया, तदन्तर सिद्धार्थ नाम की पालकी पर सवार होकर सहेतुक वन में गये। वहां मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन शाल वृक्ष के नीचे जिन दीक्षा ले ली।

जब तक छद्मस्थ रहे तब तक मौन धारण कर तपस्या करते रहे, इस तरह चौदह वर्ष तपस्या करने के बाद उन्हें कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी दिन मृगशिर नक्षत्र के उदय काल में सध्या के समय केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। उन्होंने समस्त आर्य क्षेत्रों में विहार किया।

अंत में सम्मेद शैल के एक शिखर पर विराजमान हुए। योग धारण कर आत्मध्यान में लीन हो गये। चै० शुक्ला षष्ठी के दिन सायंकाल के समय मृगशिर नक्षत्र के उदय काल में सिद्धि स्थान को प्राप्त हुए। देवों ने आकर उनका निर्वाण महोत्सव मनाया। इनका चिह्न घोड़े का था।

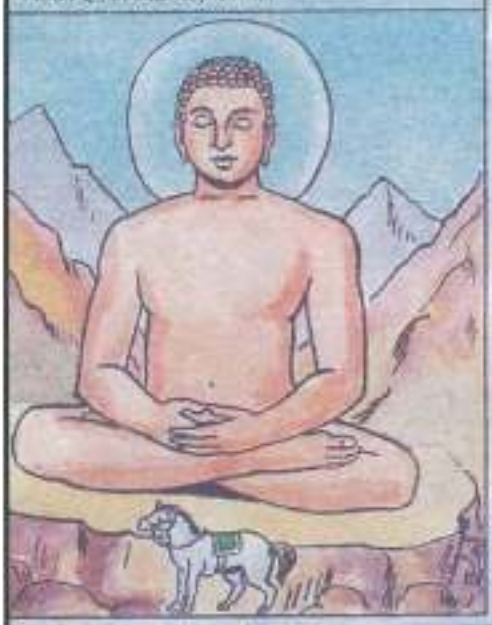

।।भगवान श्री अभिनन्दन नाथ जी।।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में मंगलावती देश में रत्नसंचय नामक नगर में वैभव शाली राजा महाबल राज्य करता था। देवांगनाओं से भी सुन्दर रानियों के साथ देवोपम सुख भोगते हुए अधिकांश समय व्यतीत हो गया। एक दिन किसी विशेष कारण से उनका चित्त विषय वासनाओं से विरक्त हो गया। जिससे वह अपने पुत्र धनपाल को राज्य देकर आचार्य विमलवाहन के पास दीक्षित हो गया।

उन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, सोलह भावनाओं का हृदय में चिन्तन किया। जिससे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो गया। आयु के अन्त में समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर महाऋद्धि धारी अहमिन्द्र हुए। ये ही अहमिन्द्र आगे चलकर अभिनन्दन नाथ हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्यानगरी में उस समय स्वयम्वर राजा राज्य करते थे। उनकी महारानी सिद्धार्था अनुपम सुन्दरी थी। राज दम्पती तरह-तरह के सुख भोगते हुए दिन बिताते थे। राजा स्वयम्वर के महल के आंगन में प्रतिदिन रत्नों की वर्षा होने लगी। अनेक शुभ शकुन हुए। जिन्हें देख भावी शुभ की प्रतीक्षा करते हुए राज दम्पत्ति बहुत हर्षित थे। महारानी सिद्धार्था ने रात्रि के पिछले पहर में सुरकुंजर आदि सोलह स्वप्न देखे एवं अंत में अपने मुख में एक श्वेत वर्ण वाले हाथी को प्रवेश करते देखा। प्रातःकाल महाराजा स्वयम्वर ने रानी के पूछने पर यह कहा-

प्रिय आज तुम्हारे गर्भ में स्वर्ग से चयकर किसी पुण्यात्मा ने अवतार लिया है। जो नो माह बाद तुम्हारे तीर्थंकर पुत्र रत्न होगा। जिसके बल, विद्या, वैभव के सामने देव-देवेन्द्र भी अपने को तुच्छ मानेंगे।

गर्भ के दिन पूर्ण होने पर रानी सिद्धार्था ने माघ शुक्ला द्वादशी के दिन आदित्य योग एवं पुनर्वसु नक्षत्र में उत्तम पुत्र प्रसव किया। देवों ने नवजात जिनेन्द्र बालक का मेरुपर्वत पर अभिषेक किया। अयोध्या पुरी में अनेक उत्सव मनाये। बालक का नाम अभिनन्दन रखा।

जब युवक हुए उनका पीला सुवर्ण जैसा वर्ण था। उनके शरीर से सूर्य के समान तेज निकलता था। वे मूर्तिधारी पुण्य के प्रतीक थे। महाराज सुमित्रर ने इन्हें राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली। अभिनन्दन स्वामी ने भी राज्य सिंहासन पर विराजमान होकर साढ़े छत्तीस लाख पूर्व तथा आठपूर्वांग तक राज्य किया। एक दिन वे महल की छत पर बैठकर आकाश की शोभा देख रहे थे।

अरे ! ये बादलों का समूह मध्य आकाश में स्थित मनोहर नगर सा लगता था। पर कुछ ही क्षण में वायु के प्रबल झोंके से नष्ट हो गया। वहीं का वहीं चला गया।

बस इसी घटना से उन्हें आत्मज्ञान प्रकट हो गया। जिससे उन्होंने राज्यकार्य से मोह त्याग कर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। अभिनन्दन स्वामी राज्य का भार पुत्र को सौंप कर देव निर्मित हस्त चित्रा पालकी पर सवार हुए। देव उस पालकी को उग्र उद्यान में ले गये। वहां उन्होंने माघ शुक्ला द्वादशी को पुनर्वसु नक्षत्र के उदय काल में दीक्षा धारण कर ली। वन में जाकर कठिन तपस्या करने लगे। एक दिन बेल उपवास का व्रत धारण कर साल वृक्ष के नीचे विराजमान थे। उसी समय उन्होंने शुक्ल ध्यान के अवलम्बन से क्षपकश्रेणी में पहुंच कर क्रम से बढ़कर पौष शुक्ला चतुर्दशी की संध्या को पुनर्वसु नक्षत्र में अनन्त ज्ञान दर्शन सुख एवं वीर्य प्राप्त हो

उन्होंने संसार के दुःखों का वर्णन कर उससे मुक्ति के उपाय बतलाये। वे जो कुछ कहते थे। वह विशुद्ध हृदय से कहते थे, इसलिए लोगों के हृदय पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता था। आर्य क्षेत्र में स्थान-स्थान पर विहार कर उन्होंने धर्म का प्रचार किया एवं संसार सिन्धु में पड़े हुए प्राणियों को हस्तावलम्बन देकर तारने में सहायता की। आयु के अन्तिम समय में श्री सम्मेद शिखर पर जा पहुंचे एवं प्रतिमायोग धारण कर अचल होकर बैठ गये। वैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में प्रातःकाल के समय मुक्ति मंदिर विराजे। इनका चिह्न वानर का था।

।।भगवान श्री सुमतिनाथ जी।।

दूसरे धातकी खण्ड द्वीप के पुष्कलावती देश में पुण्डरीकिणी नगरी के महाराज मेघरथ बड़े ही यशस्वी, दयालु व धर्मात्मा थे। अनेक प्रकार के विषय भोगते हुए जब उनकी आयु का बहुभाग व्यतीत हो गया तब एक दिन किसी कारण वश संसार से उदासीनता उत्पन्न हो गयी। ज्यों ही उन्होंने विवेक रूपी नेत्र से अपनी ओर देखा, त्यों ही उन्हें अपने बीते जीवन पर बहुत अधिक संताप हुआ।

हाय, मैंने अपनी लम्बी आयु इन विषय सुखों के भोगने में ही बिता दी, पर विषय सुख भोगने से सुख मिलता है क्या? इसका कोई उत्तर नहीं है। मैं आज तक इन दुःख के कारणों को ही सुख का कारण मानता रहा हूँ। ओह ! कैसा मायाजाल है ?

अपने पुत्र अतिरथ को राज्य सौंप वन में कठिन तपस्या करने लगे। उन्होंने अर्हन्नन्दन गुरु के पास ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। सोलह भावनाओं का चिन्तन किया, जिससे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो गया। आयु के अन्त में वैजयन्त विमान में अहमिन्द्र हुए। वहीं आगे भगवान सुमतिनाथ हुए।

चिरपरिचित अयोध्या नगरी में किसी समय मेघरथ राजा थे। उनकी महारानी मंगला सचमुच मंगला ही थी। महाराज मेघरथ के महल पर देवों द्वारा रत्न वर्षा होने लगी। मंगला देवी ने रात्रि के शेष प्रहर में ऐरावत हाथी आदि सोलह स्वप्न देख अपने मुख में प्रवेश करता हाथी देखा। प्रातः होते ही उसने प्राणनाथ से स्वप्नों का फल पूछा –

आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर बालक ने अवतार लिया है– सोलह स्वप्न उसी की विभूति के परिचायक हैं।

स्वप्नों का फल सुनकर रानी पुत्र के सुलक्षण देखने की कल्पना मात्र से बहुत खुश हुई।

नौ महीने बाद वैशाखशुक्ला एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में महारानी ने श्रेष्ठ पुत्र रत्न को जन्म दिया। तीनों लोकों में आनन्द छा गया। सुमेरु पर्वत पर देवों ने अभिषेक किया व अयोध्या में भव्य जन्मोत्सव मनाया। बालक का नाम सुमतिनाथ रखा। बालक सुमतिनाथ द्वितीया चन्द्रमा की तरह बढ़ते गये तथा अपनी कलाओं से माता-पिता का हर्षोल्लास बढ़ाते थे। शरीर की कांति तपे हुए स्वर्ण की तरह थी। अंग प्रत्यंग से लावण्य फूट पड़ता था। युवा होने पर महाराज मेघरथ उन्हें राज्य भार सौंपकर दीक्षित हो गए। भगवान सुमतिनाथ ने राज्य व्यवस्था को बहुत सुचारु रूप दे दिया था। राज्य में हिंसा, चोरी, झूठ, व्यभिचार आदि समाप्त हो गये थे।

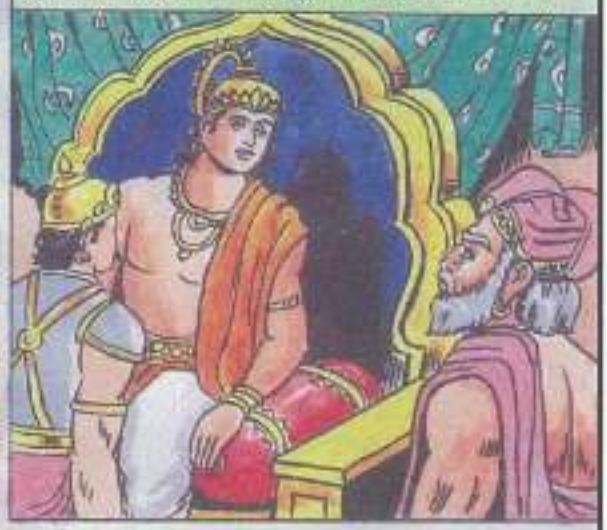

उनका पाणिग्रहण योग्य कन्याओं के साथ हुआ था। सुख शान्ति से उनका समय व्यतीत हो रहा था। तब एक दिन किसी कारणवश उनका चित्त विषय वासनाओं से विरक्त हो गया। जिससे उन्हें संसार के भोग नीरस एवं दुःख प्रद प्रतीत होने लगे।

हाय! मैंने एक मूर्ख की भांति इतनी सुदीर्घ आयु व्यर्थ ही गवा दी। दूसरों को हित का मार्ग बताऊं उनका भला करूं। यह जो बाल्यावस्था में सोचा करता था। यह सब इस यौवन एवं राज्य के सुख के उन्माद में प्रवाहित हो गया। जैसे सैकड़ों नदियों का पान करने पर भी समुद्र की तृप्ति नहीं होती। ये विषयाभिलाषाएं मनुष्य को आत्महित की ओर अग्रसर होने ही नहीं देती, इसलिए अब मैं इन विषय वासनाओं को तिलांजली देकर आत्महित की ओर प्रवृत्ति करता हूँ।

भगवान सुमतिनाथ अपने पुत्र को राज्य देकर देवनिर्मित 'असन' पालकी पर बैठ गये। देवता अपना को लगीप ही सहसाम्र वन में ले गये। वहां पहुंचने पर सुरगण साक्षी में वैशाख शुक्ला नवमी के दिन मघा नक्षत्र में दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। आत्मध्यान में लीन हो गये। थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तराल से आहार लेकर कठिन तपस्या करते हुए। बीस वर्ष बीत गये। तब उन्हें प्रियंगु वृक्ष के नीचे शुक्ल ध्यान के प्रताप से घातिया कर्मों का नाश हो जाने पर चैत्र सुदी एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

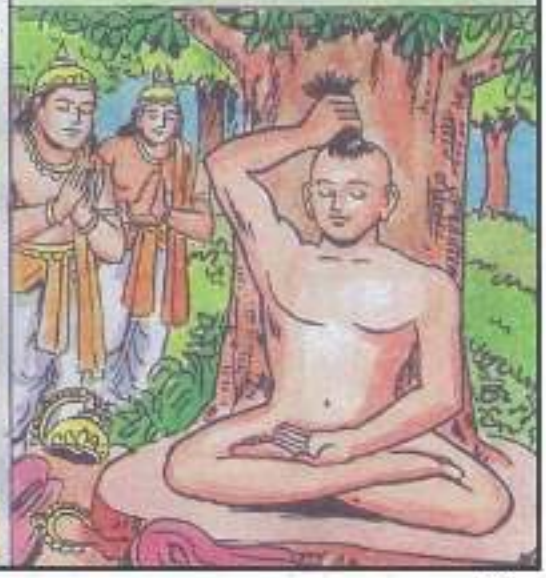

देवेन्द्र ने आकर उनका ज्ञान कल्याणक मनाया। समवशरण की रचना की। उन्होंने उपस्थित जनसमूह को धर्म अधर्म का स्वरूप बतलाया। उन्होंने आर्य क्षेत्रों विहार कर समीचीन धर्म का खूब प्रचार किया। अंतिम दिनों में सम्मेद शैल पर आये वहीं योग निरोधकर विराजमान हो गये। चैत्र सुदी एकादशी के दिन महा नक्षत्र में मुक्ति मंदिर में प्रवेश किया। देवों ने वहीं मोक्ष कल्याणक उत्सव मनाया। उनका चिह्न चकवा था।

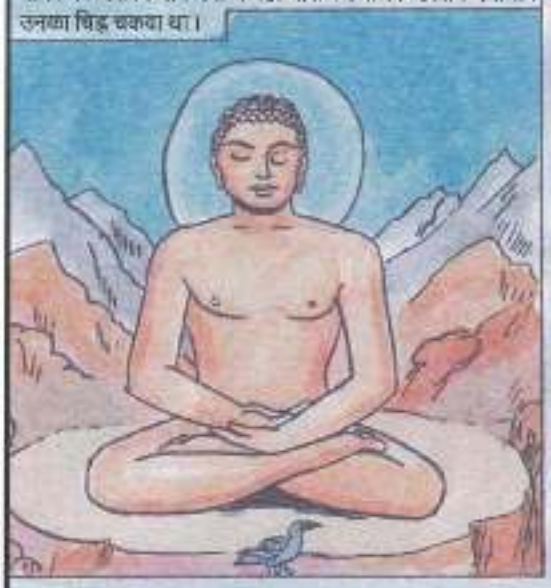

।।भगवान श्री पद्मप्रभ जी।।

दूसरे धातकी खण्ड द्वीप स्थित वत्स देश के सुसीमा नगर में किसी समय अपराजित नाम के राजा थे। वह हमेशा अपनी प्रजा की भलाई में लगा रहता था। उसकी रानियां अनुपम सुन्दर थीं। उनके साथ सांसारिक सुख भोगता हुआ दीर्घ काल तक पृथ्वी का पालन करता रहा। एक दिन किसी कारण से उसका चित्त विषय वासनाओं से विरक्त हो गया, इसलिए वह अपने पुत्र को राज्य सौंपकर वन में जाकर दीक्षित हो गया। सोलह भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। आयुस्समाप्त होने पर शुद्ध आत्मा के ध्यान में लीन हो गया। जिससे नव में ग्रैवेयक के प्रीतिकर विमान में ऋद्धिधारी अहमिन्द्र हुआ। ये ही अहमिन्द्र भगवान पद्मप्रभ होंगे।

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र की कौशाम्बी नगरी में इक्ष्वाकुवंशीय राजा धरण का शासन था। उनकी महारानी सुसीमा सर्वगुण सम्पन्न थी। रत्नों की वर्षा देखकर कुछ भला होने वाला है। यह सोचकर राजा धरण अत्यन्त हर्षित होते थे। महारानी सुसीमा सोलह स्वप्न देखने के बाद मुख में प्रवेश करते हुए हाथी को देखा। रानी के पूछने पर राजा धरण ने स्वप्नों का फल बताया।

आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर बालक ने प्रवेश किया है। ये स्वप्न उसी के अभ्युदय के सूचक हैं।

नौ माह बाद कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन महानक्षत्र में माता सुसीमा ने उत्तम बालक को जन्म दिया। देवों ने बालक को मेरुशिखर पर ले जाकर क्षीर सागर के जल से उसका अभिषेक किया। बालक के शरीर की कान्ति पद्म के समान थी इसलिए उस का नाम पद्मप्रभ रखा।

जब युवा हुए तब राजा धरण इन्हें राज्य देकर आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्त हो गये। भगवान पद्मप्रभ भी नीति से प्रजापालन करने लगे। अनेक सुन्दरी सुशील कन्याओं से विवाह हुआ। आनन्द पूर्वक समय व्यतीत हो रहा था। एक दिन वे द्वार पर बंधे हुए हाथी के पूर्व भव सुनकर प्रतिबुद्ध हो गये। उसी समय उन्हें अपने पूर्व भवों का ज्ञान हो आया। जिससे उनके अंतरंग नेत्र खुल गये। सोचा-

मैं जिन पदार्थों को अपना समझ उनमें अनुराग कर रहा हूँ वे किसी भी तरह मेरे नहीं हो सकते, क्यों कि मैं सचेतन जीव द्रव्य हूँ, एवं ये पर-पदार्थ अचेतन पुद्गल रूप हैं। एक द्रव्य का दूसरा द्रव्य रूप परिणमन त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। खेद है कि मैंने इतनी विशाल आयु इन्हीं भोग विलासों में बिता दी।

भगवान पद्मप्रभ पुत्र को राज्य सौंपकर देव निर्मित 'निवृति' नामक पालकी पर आरूढ़ हो कर मनोहर नाम के वन में गये। वहां उन्होंने जिनेश्वरी दीक्षा धारण करली। आत्म ध्यान में लीन हो गये। दो या चार दिन के अन्तर से आहार लेकर तपस्या करते हुए छह माह मौन पूर्वक बीत गये। क्षपक श्रेणी में आरूढ़ होकर शुक्ल ध्यान से चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन चित्रानक्षत्र में 'केवल ज्ञान' प्राप्त हुआ। देव देवन्द्रों ने आकर ज्ञान कल्याणक का उत्सव मनाया।

समव सरण व विहार करके समस्त आर्य क्षेत्रों में जैन धर्म का प्रचार किया अंत में सम्मेद शिखर पर पहुंचे। वहां प्रतिमा योग धारण किया। शुद्ध आत्मा के स्वरूप का ध्यान किया। एक महीने के बाद फाल्गुन कृष्णा चतुर्थी के दिन चित्रा नक्षत्र में शुक्ल ध्यान के प्रताप से अविनाशी परम पद को प्राप्त हुए। इनका चिह्न कमल का था।

।।भगवान श्री सुपार्श्वनाथ जी।।

धात की खण्ड द्वीप के सुकच्छ देश में क्षेमपुर नगर के राजा नन्दिषेण बड़े विद्वान एवं चतुर शासक थे। उसकी रानियां अनुपम सुन्दरियां थी। वह धर्म कार्यों में सुदृढ़चित रहता था। बहुत समय व्यतीत हो गया तब एक दिन उसे सहसा वैराग्य उत्पन्न हो गया। जिससे उसे समस्त भोग काले भुजंग की तरह प्रतीत होने लगे। अपने विशाल राज्य को विस्तृत कारागार समझा सोचा–

यह जीव अरहट की घड़ी के समान निरन्तर चारों गतियों में घूमता रहता है। जो आज देव है वो कल तिर्यंच हो सकता है। जो आज सिंहासन पर बैठा है। वही कल भिखारी भी हो सकता है। ओह! इतना सब होते हुए भी मैंने अभी तक इस संसार से छुटकारा पाने के लिए कोई उत्तम कार्य नहीं किया। अब मैं शीघ्र ही मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्न करूंगा।

उसने अपने पुत्र धनपति को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया एवं वन में जाकर अर्हन्नन्दन मुनिराज से दीक्षा ले ली। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। सोलह भावनाओं का चिन्तवन किया। जिससे तीर्थंकर प्रकृति बंध हो गया। आयु के अन्त में समाधि पूर्वक शरीर त्याग कर सुभद्र नामक विमान में अहमिन्द्र हुआ। ये ही आगे चलकर भगवान सुपार्श्वनाथ होंगे।

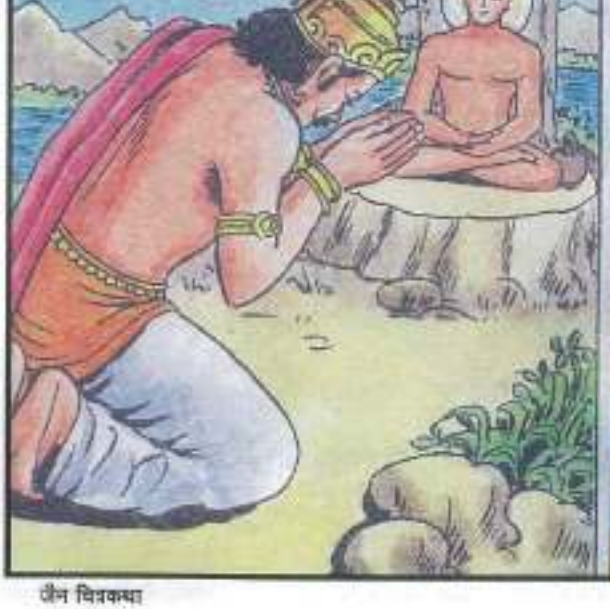

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में काशी देश के वाराणसी नगर में महाराजा सुप्रतिष्ठि राज्य करते थे। महारानी पृथ्वीसेना के साथ दम्पति सुख से रहते थे। महाराज सुप्रतिष्ठि के महल पर रत्नों की वर्षा होने लगी। कुछ समय बाद महारानी पृथ्वीसेना सोलह स्वप्न देखे अन्त में मुख में प्रवेश करता हुआ हाथी देखा। प्रात:काल पतिदेव से स्वप्नों का फल पूछा। राजा ने हर्ष से पुलकित होते हुए कहा–

प्रिय आज तुम्हारा नारी जीवन सफल हुआ। मेरा भी गृहस्थ जीवन निष्फल नहीं गया। आज तीर्थंकर पुत्र ने अवतार लिया है।

गर्भकाल के दिन पूर्ण होने पर रानी पृथ्वीसेना ने जयेष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन शुभयोग में पुत्र रत्न प्रसव किया। पुत्र की कान्ति से सम्पूर्ण गृह प्रकाशित हो गया था। देवों ने आकर मेरुपर्वत पर पाण्डुक शिला पर बालक का अभिषेक किया बालक का नाम सुपार्श्व रखा। भगवान सुपार्श्वनाथ बालकावस्था से युवावस्था में पहुंचे। उनका राज्याभिषेक हुआ। उनका शासन अत्यन्त लोक प्रिय था। अनेक कन्याओं के साथ इनका विवाह हुआ था। वे भोगों से निर्लिप्त रहते थे। मुक्त भोग भुजान कर्म बंध के कारण नहीं होते थे। इस तरह सुख पूर्वक राज्य करते हुए उन्हें किसी कारण वश संसार से विरक्ति हो गई। अब तक की आयु के व्यर्थ बीत जाने पर घोर पश्चात्ताप किया। राज, घर, परिवार का मोह त्याग वन में जाकर तप करने का दृढ़ निश्चय किया।

भगवान सुपार्श्वनाथ राज्य का भार पुत्र को सौंपकर देव निर्मित 'मनोगति' नामकी पालकी में बैठकर सहेतुक वन में गये। पालकी से उतर कर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। एक दिन उसी वन में उपवास का नियम लेकर शिरीष वृक्ष के नीचे विराजमान हुए। केवलज्ञान प्राप्त किया। देवों ने आकर ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया। समवशरण की रचना की। अनेक देशों में विहार किया। लोगों को धर्म का स्वरूप समझाया। आयु के अन्तिम समय में श्री सम्मेद शिखर जा पहुंचे। प्रतिमा योग धारण कर फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन विशाखा नक्षत्र में मोक्ष प्राप्त किया। भगवान सुपार्श्वनाथ का स्वस्तिक का चिह्न था।

।।भगवान श्री चन्द्रप्रभ जी।।

समुद्रों से घिरे हुए मध्यलोक में पुष्कर द्वीप के सुगन्धि देश में श्रीपुर नगर में श्रीषेण का राज्य था। वह बहुत बलवान, धर्मात्मा एवं नीतिज्ञ था। उनकी महारानी श्रीकान्ता दिव्य सौन्दर्य की स्वामिनी थी। धन धान्य सम्पन्न थे। सुख पूर्वक समय व्यतीत हो रहा था। श्री कान्ता का यौवन व्यतीत होने को आया। पर उनके कोई सन्तान नहीं हुई। राजा ने रानी को समझाया –

जो वस्तु मनुष्य के पुरुषार्थ से सिद्ध नहीं हो सकती उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। कर्मों के ऊपर किसका वश है? तुम्हीं कहो, किसी तीव्र पाप का उदय ही पुत्र-प्राप्ति में बाधा है, इसलिए पाठपान, जिनपूजन, व्रत उपवास आदि शुभकार्य करो, जिससे अशुभ कर्मों का बल नष्ट होकर शुभ कर्मों का बल बढ़े।

एक दिन राजा श्रीषेण महारानी श्रीकान्ता के साथ वन विहार कर रहे थे, कि वहां उनकी दृष्टि एक मुनिराज पर पड़ी। रानी के साथ उन्हें नमस्कार करके धर्म श्रवण करने की इच्छा से उनके पास बैठ गये। धर्म चर्चा के बाद उन्होंने मुनिराज से पूछा –

नाथ! मैं इस तरह कब तक गृह जंजाल में फंसा रहूंगा? क्या कभी मुझे दिगम्बर मुद्रा धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होगा?

राजन! तुम्हारे हृदय में निरन्तर पुत्र की इच्छा बनी रहती है। बस पुत्र की इच्छा ही मुनि बनने में बाधक है। आपकी महारानी श्री कान्ता ने पूर्व भव में गर्भ भार से पीड़ित युवती को देखकर अभिलाषा की थी। मेरे कभी यौवनावस्था में सन्तान न हो। इसी कारण पुत्र नहीं हुआ। अब दुष्कर्मों का निवारण होने वाला है। शीघ्र ही आपके पुत्र होगा। फिर पुत्र को राज्य देकर दीक्षित हो जायेंगे।

कुछ दिनों बाद श्रीकान्ता ने रात्रि के पिछले प्रहर में हाथी, सिंह, चन्द्रमा एवं लक्ष्मी का अभिषेक। ये चार स्वप्न देखे। उस समय उसके गर्भाधान हो गया। नौ माह बाद उसके पुत्र हुआ। प्रौढ़ावस्था में पुत्र पाकर राज दम्पति को अपार प्रसन्नता हुई। पुत्र का नाम 'श्रीवर्मा' रखा जब पुत्र राज कार्य सम्भालने योग्य हो गया। तब राजा श्रीषेन ने श्री वर्मा को राजकार्य सौंप कर जिनदीक्षा धारण करली। राजा श्रीवर्मा बहुत ही चतुर पुरुष था। जिस तरह बाहरी शत्रुओं को जीता था। उसी तरह काम क्रोधादि अंतरंग शत्रुओं को भी जीत लिया था।

एक दिन राजा श्रीवर्मा अपने महल की छत पर प्रकृति की छटा देख रहे थे, कि अकस्मात से वज्रपात हुआ। यह देखकर उनका चित्त अत्यन्त विरक्त हो गया। उल्का की तरह संसार के सब पदार्थों की अस्थिरता का विचार कर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। दूसरे दिन अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीकान्त को राज्य सौंपकर श्रीप्रभ आचार्य के पास दिगम्बर दीक्षा ले ली। अंत में सन्यास पूर्वक शरीर त्यागकर प्रथम स्वर्ग में श्रीप्रभ विमान में श्रीधरदेव का देव हुआ।

भरत क्षेत्र के अलका देश में अयोध्या नगरी में किसी समय अजितंजय नाम का राजा था। उसकी रानी अजितसेना ने एक रात्रि में हाथी, बैल, सिंह, चन्द्रमा, सूर्य, पद्म-सरोवर, शंख एवं जल से भरा हुआ घट ये सात स्वप्न देखे। प्रातः पतिदेव अजितंजय से स्वप्नों का फल पूछा-

आज तुम्हारे गर्भ में पुण्यात्मा जीव ने अवतरण लिया है। ये स्वप्न उसी के गुणों का सुयश वर्णन करते हैं। एक गंभीर, अत्यंत बलवान, सबको प्रसन्न करने वाला, तेजस्वी, बत्तीस लक्षणों से शोभित, चक्रवर्ती और निधियों का स्वामी होगा।

कल सुबह रानी को अपार हर्ष हुआ। गर्भकाल व्यतीत होने पर महारानी ने शुभ मुहूर्त में पुत्र रत्न प्रसव किया। वह बड़ा ही पुण्यशाली था। राजा ने उसका नाम अजितसेन रखा। योग्य अवस्था होने पर राजा ने उसे युवराज बना दिया।

एक दिन राजा रानी व युवराज अजितसेन राज सभा में बैठे थे। वहाँ चन्द्रचूलि नामक असुर निकला। उसे युवराज से पूर्वभव का वैर स्मरण हो आया। उसने क्रोधित होकर समस्त सभा को माया से मूर्छित कर दिया एवं युवराज अजितसेन को उठा कर आकाश में ले गया। इधर जब माया मूर्छा दूर हुई-पुत्र को न पाकर राजा रानी बहुत दुखी हुए। चारों तरफ बलशाली घुड़सवार दौड़ाये, गुप्तचर भेजे गये, पर कहीं उसका पता नहीं चला। तब तपोभूषण मुनि का आगमन हुआ। राजा को अत्यधिक हर्ष हुआ। मुनिराज ने बताया -

संसार वही है जहां इष्ट वियोग एवं अनिष्ट संयोग हुआ करते हैं। तुम विद्वान हो पुत्र का वियोग दुःख नहीं करना चाहिए। विश्वास रखो तुम्हारा पुत्र कुछ दिनों में बड़े वैभव के साथ तुम्हारे पास आ जायेगा।

इतना कह मुनिराज विहार कर गये। राजा भी शोक पूर्वक समय काटने लगा। चन्द्रकांचि असुर ने युवराज अजितसेन को आकाश में ले जाकर मारने के इरादे से मगरमच्छ आदि से भरे हुए एक तालाब में पटक दिया। स्वयं निश्चिंत होकर चला गया। युवराज अजितसेन को उसने बहुत अधिक ऊंचे से पटका अवश्य था, पर पुण्य के उदय काल से कोई चोट नहीं लगी। तैरकर शीघ्र ही तट पर आ गया।

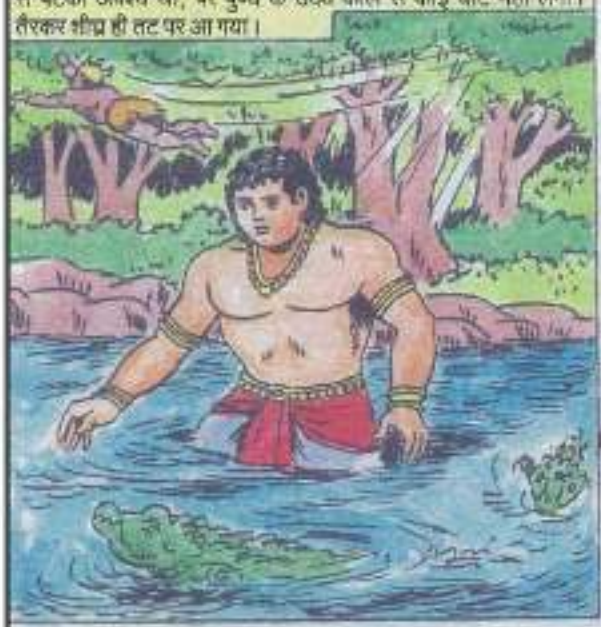

चारों तरफ भयंकर जंगल था, वृक्ष इतने घने थे कि सूर्य का प्रकाश भी नहीं फैल पाता था। स्थान-स्थान पर सिंह, व्याघ्र आदि दुष्ट जीव गरज रहे थे। बयस्क युवराज धैर्यपूर्वक संकीर्ण मार्ग से उस भयानक जंगल में प्रवेश हो गया। कुछ दूर जाने पर एक पर्वत आया वह उस पर चढ़ गया। एक मेघ के समान काला पुरुष उसके सामने आया। क्रोध से गरज कर कहने लगा-

अरे कौन है तू? मरने की इच्छा है क्या? मेरे स्थान पर क्यों आया है? जहां सूर्य एवं चन्द्रमा की किरण भी नहीं पहुंच सकती। वहां तेरा आगमन कैसे हुआ? मैं दैत्य हूँ इसी समय तुझे यमलोक पहुंचा देता हूँ।

आप बड़े योद्धा प्रतीत होते हैं। इस भीषण अटवी पर आपका कैसा अधिकार है? यहां का राजा तो कोई मृगराज होना चाहिए।

युवराज अजितसेन ने हंसते हुए कहा।

कुमार को क्रोध आ गया दोनों झपटकर मल्लयुद्ध करने लगे। कुछ समय बाद कुमार ने उसे भू पर पछाड़ने के लिए ऊपर उठाया एवं उसे आकाश में घुमाकर पछाड़ना ही चाहते थे कि-

उसने मायावी रूप त्याग दिया एवं असली रूप में आकर कहने लगा।

बस कुमार बस! मैं समझ गया कि आप बहुत अधिक बलवान हैं। उस मां को धन्य है, जिसने आप जैसा पुत्र उत्पन्न किया। मैं हिरणनाग का देव हूँ। अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना के लिए गया था। कृत्रिम वेश में यहां मैंने आपकी परीक्षा ली। आप धीर हैं, वीर हैं, गम्भीर हैं, मैं आप से बहुत प्रसन्न हूँ। अब आप अनन्त वैभव के साथ अपने पिता के पास पहुंच जायेंगे। अब मैं आपके जन्मान्तर की बात बताता हूँ।

इस जन्म से तीन भव पूर्व आप सुगन्धि नामक देश के राजा थे। आपकी राजधानी श्रीपुर थी। यहां आप श्रीवर्मा नाम से प्रसिद्ध थे। उसी नगर में शशि एवं सूर्य नाम के दो विद्यावान रहते थे। एक दिन शशि ने सूर्य के मकान में प्रवेश कर उसके धन का हरण कर लिया। जब सूर्य ने आपसे निवेदन किया तब आपने जाल कर शशि को खूब पिटवाया एवं सूर्य का धन वापस दिलवादिया। पिटते-पिटते शशि मर गया। जिससे वह चन्द्र रुचि नामक असुर हुआ। पूर्वभव के वैर से ही उसने आपका हरण किया और कष्ट दिया और उसकर से कृतज्ञ होकर मैं आपका मित्र हुआ।

इतना कह कर देव अन्तर्ध्यान हो गया।

वहां से कुमार घोड़ा चला वह विशाल अटवी समाप्त हो गई। वह पास के किसी देश में जा पहुँचा। वहां उसने देखा- नगर के लोग घबराये से भागे जा रहे हैं। कारण जानने के लिए उसने पूछा, उत्तर मिला-

क्या आकाश से टपके हो जो अनजान से बनकर पूछ रहे हो।

भाई मैं परदेशी हूँ। मुझे यहां का कुछ भी हाल ज्ञात नहीं है। आपत्ति न हो तो बताने का कष्ट कीजिए।

तब उस मनुष्य ने हड़बड़ाहट में कहा-

वह अरिंजय नाम का देश है। सामने का नगर इसकी राजधानी है। इसका नाम विपुलपुर है। यहां के राजा जय वर्मा व रानी जयश्री हैं। शशिप्रभा इनकी कन्या अपूर्व सुन्दरी है। किसी देश के महेन्द्र नाम के राजा ने जय वर्मा से शशिप्रभा की याचना की। महाराज तैयार हो गये पर किसी निमित्त ज्ञानी ने 'महेन्द्र अल्पायु है' कहकर वैसा करनेसे रुकवा दिया। राजा महेन्द्र को सहन नहीं हुआ। लश्कर जबरदस्ती राजकुमारी का हरण करने के लिए आया हुआ है। राजा जयवर्मा की उसका सामना करने की क्षमता नहीं है। उसके सैनिक नगर में उपद्रव मचा रहे हैं, इसलिए पुरवासी डरकर अन्यत्र भाग रहे हैं।

इतना कहकर वह मनुष्य भाग गया। जब कौतूहल पूर्वक विपुलपुर की सीमा में जा पहुंचे नगर के भीतर जाने लगे, राजा महेन्द्र के सैनिकों ने रोक दिया, जिससे उन्हें क्रोध आ गया। युवराज ने वहीं पर किसी एक के हाथ से धनुषबाण छीनकर राजा महेन्द्र से युद्ध करना आरंभ कर दिया एवं थोड़ी देर में उसे धराशायी कर दिया। अन्य सैनिक भाग गये।

शत्रु की मृत्यु सुनकर महाराज जयवर्मा बहुत प्रसन्न हुए। वे कुमार को बड़े आदर सत्कार से अपने महल ले गये। वहां शशिप्रभा व युवराज का विवाह करना स्वीकार हो गया। विजयार्ध गिरि के दक्षिणश्रेणी में आदित्य नाम का नगर है। उसमें धरणीध्वज नाम का विद्याधर राजा था। उसको किसी धुरुक जी ने बताया विपुलपुर की राजकुमारी शशिप्रभा का जिसके साथ विवाह होगा। वह तुम्हें मारकर भरत क्षेत्र का राजा बनेगा। उसने विद्याधरों की सेना लेकर विपुलपुर को घेर लिया और संदेश भेजा-

जो अज्ञात व्यक्ति के साथ शशिप्रभा का विवाह स्वीकार कर लिया है। वह उचित नहीं है। क्योंकि जिसके कुल, बल, पौरुष का पता नहीं हो उसके साथ कन्या का विवाह करने से अनर्थ ही होगा, इसलिए शशिप्रभा का विवाह तुरन्त मेरे साथ कर दो।

चाहे कुलीन हो या अकुलीन एक बार दी हुई कन्या फिर किसी दूसरे को नहीं दी जा सकती।

कहकर दूत को वापस कर दिया एवं लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी।

जयवर्मा को युद्ध के लिए चिन्तित देख कर अजितसेन ने कहा–

आप मेरे रहते जरा भी चिन्ता न कीजियेगा। मैं इन गीदड़ों को अभी मार भगाये देता हूँ।

ऐसा कहकर युवराज ने हिरण्यक देव का स्मरण किया। शीघ्र ही वह दिव्य अस्त्र–शस्त्रों से भरा रथ लेकर युवराज के पास आ गया। युवराज अजितसेन उस रथ पर सवार हुए हिरण्यक देव चतुराई पूर्व रथ चलाने लगा। विद्याधरेन्द्र शरणीध्वज एवं कुमार अजितसेन का जमकर युद्ध हुआ। अन्त में कुमार ने उसे मार गिराया। उसकी समस्त सेना भाग खड़ी हुई। कार्य पूरा होने पर खूब धाम से नगर में प्रवेश किया। कुमार की अनुपम वीरता देखकर समस्त नगर वासी हर्ष से फूले न समाये। राजा जयवर्मा ने शुभ मुहूर्त में युवराज के साथ शशिप्रभा का विवाह कर दिया।

फिर कुछ दिनों बाद अयोध्या पुरी वापस पिता अजितसेन ने वधु सहित आये पुत्र को बड़े उत्सव के साथ नगर में प्रवेश किया। पुत्र के वीर कार्यों को सुन कर माता–पिता बहुत हर्षित हुए।

कुछ समय बाद राजा अजितंजय ने दीक्षा ले ली। युवराज को पिता के वियोग से बहुत दुख हुआ। संसार की रीति का चिन्तवन करके सान्त्वना दी गई। मंत्रियों ने युवराज का राज्याभिषेक कर दिया। उधर मुनिराज अजितंजय को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। इधर अजितसेन की आयुधशाला में सुदर्शन प्रकट हुआ। पहले पिता के कैवल्य महोत्सव में गये, फिर वहाँ आकर दिग्विजय के लिए गये। उस समय उनकी सेना लहराते हुए समुद्र की तरह प्रतीत होती थी। सेना के आगे चक्ररत्न चल रहा था। क्रम से उन्होंने समस्त भरत क्षेत्र को आधीन कर लिया। जब राजाधिराज अजितसेन दिग्विजयी बनकर वापिस लौटे, तब हजारों मुकुटबद्ध राजाओं ने उनका स्वागत किया। राजधानी अयोध्या में आकर महाराज अजितसेन न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे।

एक दिन राजा अजित सेन गुणप्रभ तीर्थंकर से अपना भवान्तर सुनकर विरक्त हो गये। पुत्र जितशत्रु को राज्य सौंपकर जिनदीक्षा धारण कर ली। अतिचार रहित तपश्चरण किया तथा आयु के अन्त में समाधि पूर्वक शरीर त्याग कर सोलहवें अच्युत स्वर्ग के शान्तिकर विमान में इन्द्रपद प्राप्त किया। वहाँ संचय कर वह पूर्व धातकी खंड में मंगलावती देश के रत्न संचपुर नगर में राजा कनकप्रभ एवं रानी कनकमाला के 'पद्मनाभ' नाम का पुत्र हुआ। पद्मनाभ बड़ा ही तार्किक विद्वान एवं न्यायशास्त्र का वेत्ता था। उसके बल पौरुष की सब ओर प्रशंसा हुई थी।

एक दिन कनकप्रभ महाराज महल की छत पर से नगर की शोभा देख रहे थे। उनकी नजर एक जलाशय पर पड़ी। नगर के बहुत से बैल उसमें जल पी-पीकर बाहर निकल आते थे। एक बूढ़ा बैल कीचड़ में फंस गया। कीचड़ से बाहर नहीं निकल सका, प्यास के मारे वहीं तड़पने लगा। उसकी बैचेनी देखकर कनकप्रभ महाराज का हृदय विषय भोगों से विरक्त हो गया। जिससे वे पद्मनाभ को राज्य सौंपकर श्रीधर मुनिराज से दीक्षा लेकर तपस्या करने लगे।

इधर पद्मनाभ ने नीतिपूर्वक राज्य करते हुए अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह किया। जिनमें सोमप्रभा मुख्य थी। काल क्रम से सोमप्रभा के सुवर्णनाभि नाम का पुत्र हुआ। उन सब से पद्मनाभ का गृहस्थ जीवन बहुत सुखमय हो गया था।

एक बार मनोहर उद्यान में मुनिराज श्रीधर का आगमन हुआ, राजा पद्मनाभ ने मुनिराज के पास पहुंचकर उन्हें साष्टांग नमस्कार किया बाद में मुनिराज से उन्होंने अपने पूर्व भवों की जानकारी ली। फिर कुछ दिनों तक शासन करते रहे। अन्त में किसी कारणवश उनका चित्त विषय वासनाओं से विरक्त हो गया। जिससे उन्होंने अपने पुत्र सुवर्ण को राज्यभार सौंप कर जिनदीक्षा ले ली। मुनिराज पद्मनाभ ने खूब अध्ययन किया। उन्हें ग्यारह अंगों का ज्ञान हो गया। सोलह भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। आयु के अंत में सन्यास पूर्वक शरीर त्यागकर जयन्त नामक विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वही अहमिन्द्र आगे भव में अष्टम तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभ होंगे। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में चन्द्रप्रभ नगर में राजा महासेन राज्य करते थे। रानी लक्ष्मणा के साथ सुख पूर्वक समय व्यतीत हो रहा था। राजा महासेन के महल पर प्रतिदिन अनेक रत्नों की वर्षा होने लगी। देवियां आकर महारानी की सेवा करने लगी। यह सब देखकर राजा को निश्चय हो गया कि लक्ष्मणा की कुक्षि से तीर्थंकर पुत्र होने वाला है।

चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन रानी लक्ष्मणा ने रात्रि के पिछले प्रहर में हाथी बैल आदि सोलह स्वप्न देखे। गर्भ का समय बीत जाने पर लक्ष्मणा देवी ने पौष कृष्णा एकादशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में पुत्र को प्रसव किया एवं चन्द्रप्रभ नाम रखा। उनका रंग चन्द्रमा के समान धवल था। कई कुलीन कन्याओं के साथ उनका विवाह हुआ था। उनका गृहस्थ जीवन बहुत सुखमय था। राज्य करते हुए उन्हें चौबीस पूर्वांक बीत गये।

एक दिन अलंकार गृह में दर्पण में अपना मुख देखा, मुख पर कुछ विकार सा प्रतीत हुआ। जिससे उनका हृदय सांसारिक भोगों से विरक्त हो गया। सोचने लगे–

यह शरीर प्रतिदिन कितना ही क्यों न सजाया जाय, पर काल पाकर विकृत हुए बिना नहीं रह सकता। विकृत होने की तो बात ही क्या? यह सम्पूर्ण नष्ट ही हो जाता है। इस शरीर में राग रहने से उससे सम्बन्ध रखने वाले अनेक पदार्थों से राग करना पड़ता है। अब मैं ऐसा कोई कार्य करूंगा जिससे आगे के भव में शरीर ही प्राप्त न हो।

भगवान चन्द्रप्रभ अपने पुत्र चन्द्र को राज्य सौंप कर देव निर्मित विमला पालकी पर सवार होकर सर्वर्तुक नामक वन में पहुंचे निग्रन्थ मुनी हो गये। उसी वन में नाग वृक्ष के नीचे फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को अनुराधा नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। देवों ने आकर ज्ञान कल्याणक का उत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। दिव्य ध्वनि के द्वारा कल्याणकारी उपदेश दिया। उन्होंने अनेक देशों में विहार किया। असंख्य प्राणियों को संसार सागर से उद्धार कर मोक्ष प्राप्त कराया। अन्त में सम्मेद शिखर पर आकर विराजमान हुए। प्रतिमा योग धारण कर एक माह उपरान्त फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में मोक्ष को प्राप्त हो गये। देवों ने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की। उनका सिद्ध चन्द्रना का था।

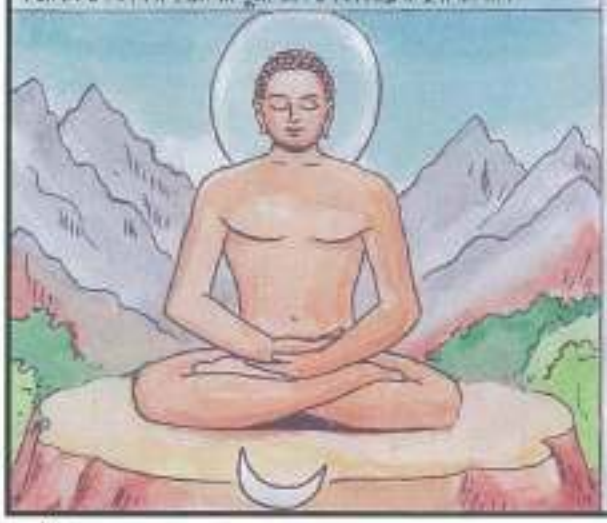

।।भगवान पुष्पदन्त जी (श्री सुविधिनाथ)।।

पुष्करार्धद्वीप के पुष्कलावती देश में समृद्धिशाली पुण्डरी किणी नगरी में अत्यधिक बलवान व बुद्धिमान राजा महापद्म का राज्य था। एक दिन मनोहर वन में महामुनि भूतहित नाथ पधारे। प्रजा व राजपरिवार सहित मुनिराज के दर्शन के लिए गया। उनके उपदेश से प्रभावित होकर उसने राज्य, स्त्रीसुख आदि से मोह त्याग दिया एवं पुत्र नन्द को राज्य सौंपकर दीक्षा ले ली। कठिन तपस्या की और अध्ययन कर ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। एक समय उसने निर्मल हृदय से दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन किया। जिससे तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का बंध हो गया। अन्त में समाधिपूर्वक शरीर त्यागकर चौदहवें अनन्त स्वर्ग में इन्द्र हुआ। ये इन्द्र ही आगे चलकर तीर्थंकर पुष्पदंत होंगे।

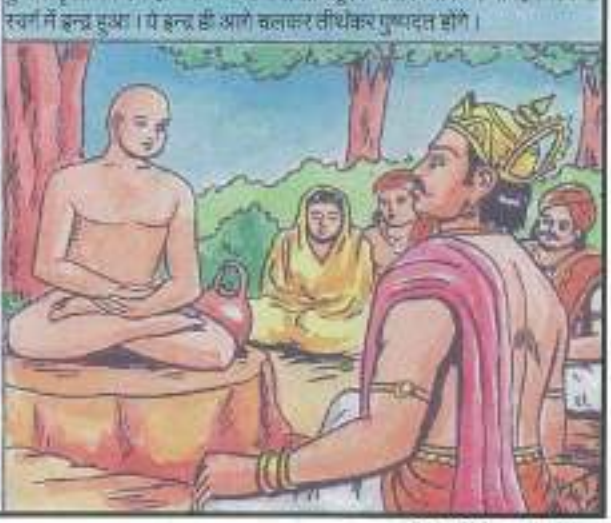

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में काकन्दी महामनोहर नगरी में इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुग्रीव का राज्य था। उनकी रानी का नाम जयरामा था। देवों ने महाराज सुग्रीव के महल पर रत्नों की वर्षा शुरू कर दी। अनेक देव कुमारियां आकर महारानी जयरामा की सेवा करने लगी। रानी जयरामा ने सोलह स्वप्न देखे। प्रातः काल पतिदेव से स्वप्नों का हाल पूछा –

आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर पुत्र ने अवतार लिया है। यह महापुण्यशाली पुरुष है। देखो! उसके गर्भ में आने के छह माह पहले से प्रतिदिन करोड़ों रत्न बरस रहे हैं एवं देव कुमारियां तुम्हारी सेवा कर रही हैं।

प्राणनाथ से स्वप्नों का फल सुनकर रानी को बहुत प्रसन्नता हुई। गर्भ का समय पूरा होने पर मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के दिन उत्तम पुत्र का जन्म हुआ। देवों ने क्षीर सागर के जल से बालक का जन्माभिषेक किया एवं उनका पुष्पदंत नाम रखा। महाराज सुग्रीव ने हर्षोल्लास पूर्वक पुत्रोत्सव मनाया। बालक पुष्पदंत बाल इन्दु की तरह क्रम से बढ़ने लगे। कुमार अवस्था के बाद उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। राज्य की बागडोर हाथ में आते ही उनका साम्राज्य प्रतिदिन बढ़ने लगा। कुलीन कन्याओं के साथ इनका विवाह हुआ। राज्य करते हुए इन्हें बहुत वर्ष व्यतीत हो गये।

एक दिन उल्कापात देखने से उनका हृदय विरक्त हो गया। वे सोचने लगे – इस संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। सूर्योदय के समय जिस वस्तु को देखता हूँ, उसे सूर्यास्त के समय नहीं पाता हूँ। जिस तरह इन्धन से कभी अग्नि सन्तुष्ट नहीं होती, उसी तरह पंचेन्द्रिय के विषयों से मानव अभिलाषाएं कभी सन्तुष्ट नहीं होती। खेद है कि मैंने अपनी विशाल आयु साधारण मनुष्यों की तरह यों ही बीता दी। दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर मैंने उसका अभी तक सदुपयोग नहीं किया। आज मेरे अंतरंग नेत्र खुल गये हैं। जिसमें मुझे कल्याण का मार्ग स्पष्ट दीख रहा है। समस्त परिवार व राजकार्य से मुक्त हो निर्जन वन में बैठकर आत्मध्यान करूं।

निदान वे सुमति नामक पुत्र को राज्य का भार सौंप कर देव निर्मित 'सूर्यप्रभा' पालकी द्वारा पुष्पक वन में गये। तिन दीक्षा ले ली। आत्मध्यान में लीन हो गये। वे ध्यान पूर्ण होने पर कभी प्रतिदिन कभी दो तीन चार या उससे अधिक दिनों के अन्तराल से आहार लेने के लिए जाते थे। इस तरह चार वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन नाग वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठे थे। वहीं कार्तिक शुक्ला द्वीतीया के दिन मूल नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। देवों ने आकर उनका ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया। समवशरण की रचना की। देश विदेश में विहार कर सद्धर्म का प्रचार किया। आयु के अन्त में सम्मेद शिखर पर योगनिरोध किया। शुक्ल ध्यान के द्वारा अघातिया कर्मों का नाश कर भादों शुक्ला अष्टमी के दिन मूल नक्षत्र में मोक्ष प्राप्त किया। देवों ने निर्वाण कल्याणक की पूजा की। भगवान पुष्पदन्त का ही दूसरा नाम सुविधिनाथ था। इनके मगर का चिह्न था।

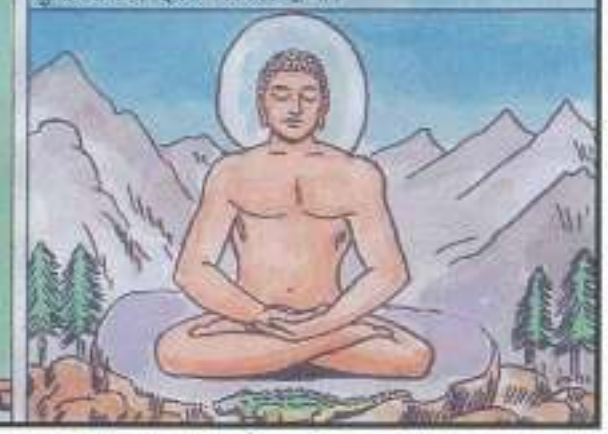

।।भगवान श्री शीतल नाथ जी।। पुष्कर द्वीप के वत्स देश में सुसीमा नगरी के राजा पद्मगुल्म साम, दाम, दण्ड एवं भेद, इन चार नीतियों से पृथ्वी का पालन करते थे। उनका निर्मल यश सम्पूर्ण प्रदेश में फैला हुआ था। वे अत्यन्त प्रतापी होकर भी साधु स्वभावी पुरुष थे। एक बार बसन्त आगमन पर सपरिवार बसन्तोत्सव मना रहे थे। नृत्य संगीत आदि के मनोहारी उत्सव मनाये गये। बसन्त के दो माह कब बीत गये। राजा को उसका पता भी नहीं चला। जब धीरे-धीरे वन से बसन्त की शोभा विदा हो गई। ग्रीष्म की तप्त लू चलने लगी। तब राजा का ध्यान उस ओर गया। वहां उन्होंने बसन्त की प्रतीक्षा की पर उसका एक भी चिह्न नहीं दिखाई दे रहा था। यह देख कर राजा पद्मगुल्म का हृदय विषयों से विरक्त हो गया। उन्होंने सोचा-

संसार के सब पदार्थ इस बसन्त की तरह क्षण भंगुर है। मैं चिरतर समझकर तरह-तरह की रंगरेलिया कर रहा था। आज वही बसन्त यहां दृष्टिगोचर तक नहीं होता। अब न आमों में बौर दिखाई पड़ रहा है एवं न कहीं उन पर कोयल की मीठी आवाज ही सुनाई दी जा रही है। अब मलयाचल का पता ही नहीं है। उसके स्थान पर ग्रीष्म की तप्त लू बह रही है। अहो अचेतन चीजों में इतना परिवर्तन। पर मेरे हृदय के भोग-विलासों में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। खेद है कि मैंने अपनी आयु का बहुत भाग यूं ही बिता दिया पर आज मेरे अन्तरंग नेत्र खुल गये हैं। मैं अपना हित भी कर सकूंगा? बस मिल गया मन्त्र-हित का मार्ग। वह मार्ग यह है कि मैं अतिशीघ्र राज्य जंजाल से छुटकारा पाकर-दीक्षा कर लूं एवं निर्जन वन में रहकर आत्म भण्डार को शान्ति सुधा से भर लूं।

ऐसा विचार कर महाराज पद्मगुल्म वन से महल वापस आये एवं पुत्र चन्द्रन को राज्य सौंपकर पुनः वन में पहुंच गये। वहां आनन्द नामक आचार्य के पास दीक्षा ले ली। आत्म शुद्धि करने लगे। ग्यारह अंगों तक का ज्ञान प्राप्त किया, सोलह भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थंकर महापुण्य का बंध किया। आयु के अन्तिम समय में समाधि में स्थित हो गये। मरकर पन्द्रहवें आरण स्वर्ग में इन्द्र हुए। यही इन्द्र आगे भव में भगवान शीतलनाथ होंगे।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मलयदेश के भद्रपुर नगर में इक्ष्वाकुवंशीय दृढ़रथ राजा थे। उनकी महारानी का नाम सुनन्दा था। भगवान शीतलनाथ के गर्भ में आने के छह माह पूर्व ही देवों ने इनके महल पर रत्नों की वर्षा शुरू कर दी। महारानी सुनन्दा ने रात्रि के पिछले प्रहर में सोलह स्वप्न देखे। माघ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में सुनन्दा के गर्भ से भगवान शीतलनाथ का जन्म हुआ। देवों ने मेरुपर्वत पर उनका जन्माभिषेक किया। वहां से आकर भद्रपुर में धूम धाम से जन्म का उत्सव मनाया गया। उनका नाम शीतलनाथ रखा गया। राज परिवार में बड़े ही लाड़ प्यार से उनका पालन हुआ। इनका शरीर सुवर्ण के समान उज्ज्वल पीतवर्ण का था। युवावस्था में इन्हें राज्य की प्राप्ति हुई। इन्होंने भली भांति राज्य का पालन किया। धर्म, अर्थ, काम का समान रूप से सेवन किया।

एक दिन भगवान शीतलनाथ विहार के लिए वन में गये, तब सब वृक्ष हिम ओस से आच्छादित थे। पर थोड़ी ही देर बाद सूर्य का उदय होने पर वह ओस अपने आप नष्ट हो गयी थी। यह देखकर उनका हृदय विषयों की ओर से सर्वथा विरक्त हो गया। उन्होंने संसार के सब पदार्थों को हिम के समान क्षणभंगुर समझ कर उनसे राग भाव त्याग दिया एवं वन में जाकर तप करने का निश्चय कर लिया।

पुत्र को राज्य सौंपकर देव निर्मित 'सुप्रभा' पालकी पर सवार होकर स्वयं सहेतुक वन में जा पहुंचे। दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। तपश्चरण करते हुए तीन वर्ष बीत गये। पौष कृष्णा चतुर्दशी के दिन पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में उन्हें दिव्य आलोक केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों ने आकर ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई। सार्वभौम धर्म का उपदेश देकर उपस्थित जनता को सन्तुष्ट किया। उन्होंने अनेक देशों में विहार कर संसार एवं मोक्ष का स्वरूप बतलाया। आयु के अन्त में श्री सम्मेद शिखर पर प्रतिमा योग से विराजमान हो गये एवं अश्विन शुक्ला अष्टमी के दिन पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में अघातिया कर्मों का नाश कर स्वतंत्र सदन को प्राप्त हुए। देवों ने आकर निर्वाण भूमि की पूजा की। इनके कल्प वृक्ष का चिह्न था।

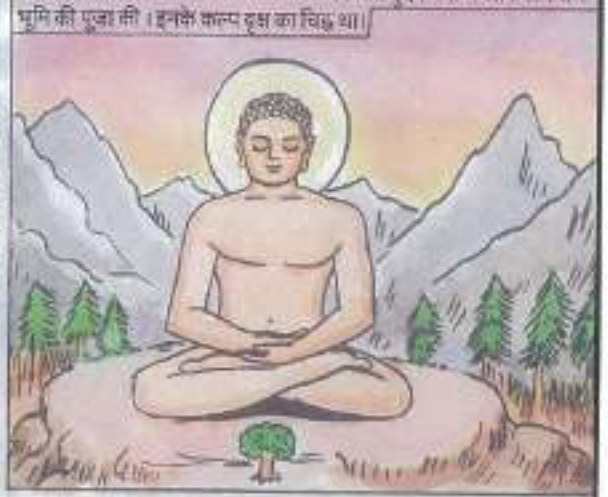

।।भगवान श्री श्रेयांस नाथ जी।। पुष्कर द्वीप के सुकच्छ देश में श्रेयपुर नगर राजा नलिनप्रभ की राजधानी था। उसने अपने प्रचण्ड बाहुबल से समस्त क्षत्रियों को जीत कर अपना राज्य निष्कंटक बना लिया था। सुन्दर व सुशील रानियां थी। आज्ञाकारी पुत्र थे, निष्कंटक राज्य था, असीम सम्पत्ति थी, वह स्वस्थ एवं निरोग था। वह प्रकार के सुख सम्पन्न प्रजा का पालन करता था। एक बार सहस्राम्रवन में अनन्त नामक जिनेन्द्र ने श्रावक धर्मों में व्रतों का व्याख्यान किया एवं अंत में संसार के दुःखों का निरूपण किया। जिसे सुनकर नलिनप्रभ सहसा प्रतिबुद्ध हो गया। उस समय उसकी अवस्था मानों किसी दुःस्वप्न देख कर जागे हुए मनुष्य की सदृश हो गयी थी। वह विषय वासनाओं से अत्यंत विरक्त हो गया।

उसने राजधानी जा कर पहले पुत्र को राज्य सौंप दिया एवं फिर वन में जाकर मुनि दीक्षा ले ली। वहां ग्यारह अंगों का अभ्यास कर सोलह भावनाओं का चिन्तवन किया। जिससे तीर्थंकर पुण्य प्रकृति बंध हो गया। आयु के अंत में सन्यास पूर्वक शरीर त्याग कर अच्युत स्वर्ग में पुष्पोत्तर नामक विमान में इन्द्र हुआ। यही इन्द्र आगे भव में भगवान श्री श्रेयांसनाथ होंगे।

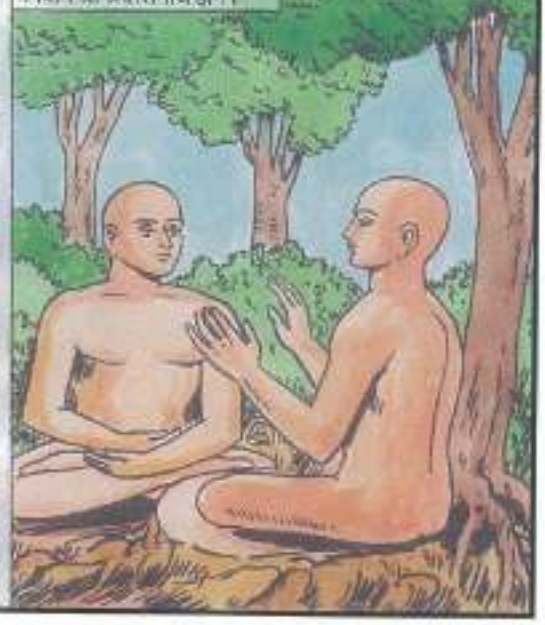

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सिंहपुर नगर में इक्ष्वाकुवंशीय राजा विष्णु राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम सुनन्दा था। रात्रि के अन्तिम प्रहर में महारानी सुनन्दा ने हाथी, बैल आदि सोलह स्वप्न देखे। प्रातःकाल उसने प्राणनाथ से स्वप्नों का फल सुना। जिससे वह बहुत अधिक प्रसन्न हुई। यह गर्भस्थ बालक का ही प्रभाव था जो उसके गर्भ में आने के छह माह पहले से लेकर पन्द्रह माह तक महाराज विष्णु के महल पर रत्नों की वर्षा होती रही एवं देव कुमारियां महारानी सुनन्दा की सेवा करती रहीं।

गर्भ का समय व्यतीत होने पर फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में सुनन्दा देवी के पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। उस समय त्रिलोक सुख शकुन हुए। देवों ने मेरुपर्वत पर ले जाकर बालक का क्षीराभिषेक किया। फिर सिंहपुर इक्ष्वाकुवंश गगन उन्नत महोत्सव सम्पन्न बालक का नाम श्रेयांस रखा। राजपरिवार में बड़े प्रेम से उनका लालन पालन होने लगा।

युवावस्था में उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। योग्य कुलीन कन्याओं के साथ उनका विवाह हुआ था। उनका राज्य काल सुख से बीतता था। इन्होंने बयालीस लाख वर्ष तक राज्य किया। एक दिन बसन्त ऋतु का परिवर्तन देखकर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया, जिससे दीक्षा लेकर तप करने का निश्चय कर लिया।

अपने श्रेयस्कर नामक पुत्र को राज्य सौंपकर देव निर्मित विमलप्रभा पालकी पर सवार होकर देवों द्वारा मनोहर नामक उद्यान में गये। वहां उन्होंने दिगम्बर दीक्षा ले ली। मौन पूर्वक दो वर्ष व्यतीत होने पर तुम्बुर वृक्ष के नीचे माघकृष्णा अमावस्या के दिन श्रवण नक्षत्र में पूर्णज्ञान प्राप्त हो गया। देवों ने आकर कैवल्य महोत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई। आर्य क्षेत्रों में सर्वत्र विहार कर जैन धर्म का प्रचार किया। आयु के अंत में श्री सम्मेद शिखर पर एक महीने तक योग निरोध कर प्रतिमायोग से विराजमान हो गये। वहीं पर श्रावण शुक्ला पूर्णमासी के दिन धनिष्ठा नक्षत्र में मुक्ति मंदिर में प्रवेश किया। देवों ने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की। उनका चिह्न गैंडा था।

जैन धर्म के प्रसिद्ध महापुरुषों पर आधारित रंगीन सचित्र जैन चित्र कथा

जैन धर्म के प्रसिद्ध चार अनुयोगों में से प्रथमानुयोग के अनुसार जैनाचार्यों के द्वारा रचित ग्रन्थ जिनमें तीर्थंकरों, चक्रवर्ति, नारायण, प्रतिनारायण, बलदेव, कामदेव, तीर्थक्षेत्रों, पंचपरमेष्ठी तथा विशिष्ट महापुरुषों के जीवन वृत्त को सरल सुबोध शैली में प्रस्तुत कर जैन संस्कृति, इतिहास तथा आचार-विचार से सीधा सम्पर्क बनाने का एक सरलतम् सहज साधन **जैन चित्र कथा** जो मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान वर्द्धक संस्कार शोधक, रोचक सचित्र कहानियां आप पढ़ें तथा अपने बच्चों को पढ़ावें **आठ वर्ष से अस्सी** तक के बालकों के लिये एक आध्यात्मिक टोनिक **जैन चित्र कथा**

सम्पर्क सूत्र :

अष्टापद तीर्थ जैन मन्दिर

विलासपुर चौक,
दिल्ली-जयपुर N.H. 8,
गुड़गाँव, हरियाणा
फोन : 09466776611
09312837240

द्वारा
आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला
एवं
मानव शान्ति प्रतिष्ठान

ब्र. धर्मचन्द शास्त्री
प्रतिष्ठाचार्य

अष्टापद तीर्थ जैन मन्दिर

विश्व की प्रथम विशाल 27 फीट उत्तंग पद्मासन कमलासन युक्त युग प्रर्वतक भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली के दर्शन कर पुण्य लाभ प्राप्त करें।

मानव शान्ति प्रतिष्ठान

विलासपुर चौक, निकट पुराना टोल, दिल्ली-जयपुर राष्ट्रीय राजमार्ग 8,
गुड़गांव (हरियाणा) फोन नं. : 09466776611, 09312837240